चतुर्थ अध्याय
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में चित्रित ग्राम जीवन की समस्याएँ

चतुर्थ अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी के उपन्यासों में चित्रित ग्रामजीवन की समस्याएँ

(रतिनाथ की चाची, बलचनमा, गंगा मैया, बाबा बटेसरनाथ, मैला आँचल के बारेमें)

1. अंधविश्वास की समस्या –
   - अ) अंधविश्वास
   - ब) भूत – प्रेत – चुडैल – डायन संबंधी अंधविश्वास।
   - क) मंत्र–तंत्र झाड–फूँक, जडी–बूटी, जादूटोणा संबंधी अंशविश्वास।
   - ड) शकुन–अपशकुन संबंधी अंधविश्वास।
   - इ) पाप–पुण्य संबंधी अंधविश्वास।
2. शोषण की समस्या –
   - अ) जमींदारों द्वारा शोषण की समस्या।
   - ब) पुलिस द्वारा शोषण की समस्या।
   - क) अंग्रेजों द्वारा शोषण की समस्या।
   - ड) धार्मिक व्यक्तिद्वारा शोषण की समस्या।
   - इ) नारी शोषण की समस्या।
3. जातीय भेदाभेद की समस्या।
4. भ्रष्टाचार की समस्या ।
5. अशिक्षा की समस्या ।
6. यौन संबंधों की समस्या ।

7. अन्य समस्याएँ –

अ) नशापान की समस्या ।

ब) दारिद्रयता तथा भूख की समस्या ।

क) प्राकृतिक आपदा की समस्या ।

निष्कर्ष –

चतुर्थ अध्याय

"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में चित्रित ग्राम-जीवन की समस्याएँ

प्रास्ताविक :-

मानव ने अपनी विभिन्न जैविक तथा मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया। मनुष्य से निर्मित इस सामाजिक व्यवस्था में प्रत्येक मनुष्य एक-दूसरे पर अवलंबित है। इसीकारण समस्त मानव अपना जीवन समूहों में रहकर बिताता है। विभिन्न सामाजिक समूहों में रहकर ही मानव के गुण-दोषों का स्पष्टीकरण, विकास और परिष्कार होता हैं। इसी से ही समाज और संस्कृति की प्रगती भी होती है। प्रत्येक मनुष्य पर ऐसे सामाजिक समूहों का प्रभाव दिखाई देता है। हर एक व्यक्ति का रहन-सहन, विचार, भाव, आदि का प्रभाव रहता है। इसी कारण फ्रांसीस ई मेरिल ने मानव को एक 'सामाजिक प्राणी' (सोशियल बीर्यिंग) कहने की अपेक्षा इसे एक 'सामूहिक प्राणी' (ग्रुप ॲनिमल) कहना उचित समझा है।[1] भारतीय समाज व्यवस्था में मनुष्य के जन्म से लेकर मनुष्य के अंत तक अनेक संस्कार किए जाते है। बच्चा जन्म लेते ही उसका नामकरण, विवाह से लेकर मृत्यू के उपरान्त भी उस पर विधीपूर्वक संस्कार होते है। इसीकारण भारतीय संस्कृति को आज सारे विश्व में उच्च्व संस्कृति के रुप में माना गया है। वस्तुतः समाज का निर्माण मनुष्य से ही हुआ है। धीरे-धीरे समाज में कुछ ऐसे नियम तैयार किए, जिससे मानव सही दिशा में अपना जीवनयापन करें। लेकिन अज्ञानी, अनपढ़, जनों ने सामाजिक पहलूओं को अधिक तर महत्व दिया। परिणामतः समाज, संस्कृति के विश्वास के बदले अंधविश्वास का निर्माण हुआ और यही अंधविश्वास समाज में आज तक दिखाई देता हैं। नागरी जन-जीवन की अपेक्षा ग्रामीण जन-जीवन में ऐसे अंधविश्वास का पालन किया जाता है। ग्रामीण लोग अनपढ़ होने के कारण कुछ मुठ्ठी भर लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए उनका शोषण किया, जिनमें जमींदार, धार्मिक व्यक्ति है। लोग रुढ़ि-परंपरा की जंजीर में अटक गए। रीति-रिवाज का वे जी-जान से पालन करने लगे। इसीकारण उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होती गई। व्यवसाय के आधारपर

वर्णव्यवस्था निश्चित हो गई। परिणामतः छुआछूत की समस्या बढ़ गई। समाज में निरंतर पीसा जानेवाला वर्ग अछूत समझ गया। अतः उन्हें धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक अधिकारों से वंचित रखा गया। जातीयता की निर्मिती हो गई, धीरे–धीरे इसी जातीयता ने भयावह रुप धारण कर लिया। ग्रामीण जन–जीवन में जातीयता की पकड़ इतनी मजबूत हो गई कि लोग एक–दूसरे को जाति से पहचानने लगे। इसीतरह ग्रामीण जन–जीवन में बहुमुखी समस्याओं का निर्माण हुआ और इन समस्याओं को प्रकाश में लाने का, युवकों में चेतना जागृति करने का प्रयास जिन साहित्यकारों ने किया उनमें नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, भैरवप्रसाद गुप्त का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अपने उपन्यास बाबा बटेसरनाथ, बलचनमा, रतिनाथ की चाची, गंगा मैया, मैला आँचल में ग्रामजीवन के बहुमुखी समस्याओं को उजागर किया तथा उसके प्रति चेतना लाने का प्रयास किया है। इसके बारे में लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का मंतव्य, फणीश्वरनाथ 'रेणु'जी के 'मैला आँचल' के बारे में बिलकुल सही है – "मैला आँचल की एक विशिष्टता यह भी है कि, गाँव–जीवन को लेकर ग्रामीण समस्याओं में ही लेखन नहीं उलझ गया है। उसने गाँव की अन्तरात्मा को भी स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। प्रेमचंद के उपन्यासों की एक बहुत बड़ी सीमा यह थी कि उन्होंने व्यक्तियों की ओर उतना ध्यान नहीं दिया, जितना समस्याओं की ओर। रेणु ने समस्याओं के साथ–साथ व्यक्ति का भी अद्‌भुत समन्वय करने की चेष्टा की है और यही कारण है कि इस उपन्यास में स्थुलता नहीं सूक्ष्मता की अभिव्यक्ति कलात्मक ढंग से हुई है, जो इसे प्रेमचंद के गांव चित्रण से अलग करती है।"[2]

मानव–जीवन आज विकसित हो रहा है। नए शोध, संशोधन, प्रगति के साधन, सरकार की नीति, सुधार, प्रयास आदि के धीरे–धीरे ग्रामजीवन में विकास की रोशनी दिखाई देती है। अनपढ़, आवारा, अज्ञानी, अंधविश्वासी ग्रामवासी आज चेतित बनकर ग्रामजीवन में चेतना की उमंगे उत्पन्न कर रहा है। विकास और समस्या का संबंध रहा है। इसी के अनुसार विकसित होनेवाले ग्रामजीवन में विकास के साथ कई समस्याएँ निर्माण हुई है। यह सच है कि कई समस्याएँ मानवनिर्मित तो कुछ प्राकृतिक है। समस्याएँ चुनौती होती है, बिना

समस्या से विकास संभव नहीं है। अतः समस्याओं के साथ संघर्ष करके मानव विकास का मिठा फल प्राप्त कर सकता है। संघर्ष मानव जीवन का मूल है। साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में मानवी जीवन में स्थित समस्याओं पर प्रकाश डाला है। 'ग्रामजीवन' भी इसके लिए अपवाद नहीं है। स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी उपन्यासकारों में भारतीय ग्राम जीवन की स्थिति पर विचार करते हुए मौलिक कृतियों का सृजन किया है। प्रस्तुत अध्याय में हम ऐसे ही कुछ उपन्यास कृतियों के माध्यम से भारतीय ग्रामजीवन में स्थित कुछ समस्याओं पर विचार करेंगे। ग्रामीण जन–जीवन में मुख्यतः समस्याएँ, उनका स्वरुप, स्थिति, परिणाम आदि के साथ ग्रामजीवन का विकास आलोच्य उपन्यासों में किसप्रकार चित्रित हुआ है, इस पर हम यहाँ सोचेंगे।

अंधविश्वास की समस्याएँ :–

अ) अंधविश्वास :–

भारतीय समाज–व्यवस्था को संचलित करनेवाले तत्वों के अंतर्गत धर्म का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास रखना ही धर्म का मूल स्थान है। भारतीय जनता का यह विश्वास है कि प्रत्येक सुख–दुःख का निर्माता ही परमेश्वरा होता है। दर्शनशास्त्र में इसे 'ईश्वरवाद' कहा है मगर विज्ञान इसे 'अंधविश्वास' मानता है। अंधविश्वास अशिक्षा, अज्ञान का परिणाम है। गाँव अभी भी शहरों की तुलना में शिक्षा के स्तर और प्रतिशत में बहुत पीछे है। इसीकारण गाँव का अधिकांश जन–जीवन अभी तक अज्ञान, अशिक्षा के साथ अंधविश्वास से जुड़ा हुआ है। अंधविश्वास के बारे में विवेकी राय का कथन है – "गाँव को अंधविश्वासों से काटकर यदि पृथक कर दिय जाय तो वह गाँव नहीं रह जाता है। गांव का अर्थ है विश्वासू और शताब्दियों का यह विश्वास अंधकाराविष्ट रहा। अतः 'अंधविश्वास' होकर उसके साथ इस प्रकार जुड़ गया है कि अनिवार्य अंग हो गया है।"[3] गाँव में स्थित जनजातियाँ अज्ञानी, भोली–भाली धार्मिक प्रवृत्ति की होने के कारण समाजमान्य परंपरागत नीति का धार्मिक मान्यताओं का और सांस्कृतिक परंपराओं का निर्वाह करती आ रही है। परिणामस्वरुप उनमें श्रध्दा–अंधश्रध्दा की समस्या का निर्माण होता जा रहा है। पंडित नेहरुजी ने अंधविश्वास की

भावना को समस्या का मूल कारण मानते हुए कहा है "भारत की अधिकांश सामाजिक समस्याएँ जैसे जाति–पांति, दहेज, प्रथा, साम्प्रदायिकता, बाल–विवाह आदि के पीछे मूल कारण अंशविश्वास एवं रुढ़ियों का आँखे मूँद कर पालन करना ही हैं।"[4] हिन्दी के स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में ग्रामीण जन–जीवन में प्रचलित धर्म संबंधी मान्यताओं, अंधविश्वासों, भूत–प्रेम, चुडैल–डायन संबंधी विश्वासों, पाप–पुण्यसंबंधी मान्यताएँ, शकुन–अपशकुन संबंधी धारणाओं, मंत्र–तंत्र, झाड–फूँक संबंधी कल्पनाओं पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

मिथिला भूमि पर लिखित नागार्जुन की 'रतिनाथ की चाची' (1948) रचना में अनेक प्रकार के अंधविश्वासों पर प्रकाश डाला है। यहाँ विवाह में बिकाऔ प्रथा सौराठ प्रथा भी है। साथ–ही–साथ यहाँ मुंडन–छेदन, पर्दा–प्रथा, बलि चढाना, मनौतियाँ–माँगना, पूजा–अर्चा, उपवास या व्रत रख्ना, जादू–टोणा करना अर्थात कटोरा चलाना आदि कई अंधविश्वास लोग मानते है। गाँव के धार्मिक व्यक्ति ताराबाबा पर गाँव के सारे लोगों का विश्वास है। उनके कहने पर जटानाथ गर्भ गिराने का यंत्र तैयार करता है। ताराबाबा के बारे में अनेक किवदन्तियाँ प्रचलित हैं; जैसे, चोर का घर में ही अटक रहना, मरी हुई गाय को जीवित करना आदि को लोग सच मानते हैं। ताराबाबा का प्रसाद भगवान का प्रसाद समझकर भाँग पीते है। जयनाथ हररोज बाबा का प्रसाद मानकर भांग पीता है, जिसकी उसे आदत पड़ जाती है। रतिनाथ जूगल कामति के कटोरा चलाने से वह पकड़ा जायेगा। इस प्रकार यहाँ अनेक शकुन–अपशकुन भी रहे हैं, जैसे विद्या आरंभ के लिए बृहस्पतिवार को अच्छा मानना आदि कई अंधविश्वास यहाँ के लोगों में दिखाई देते है।

नागार्जुन की रचना 'बलचनमा' (1952) में भी अनेक अंधविश्वासों के साथ ग्रामीण जन–जीवन का चित्रण किया है। यहाँ के लोग भूत–प्रेत्र, ओझा–मुनि पर अत्याधिक विश्वास रखते है। इसीकारण सुखिया पर भूत सवार देख मालिकाइन भगवती मैया को मनाने लगती तथा झाड–फूंक, पूजा–पाठ, टोना–टापर करनेवाले ओझा दामो ठाकुर को बुलाती है और दामो

ठाकुर उसका भूत निकालता है। इतना ही नहीं तो फसल के लिए, बारीश के लिए, बाढ न आने के लिए, मनौती के रुप में काली माई के सामने दो बकरों की बलि देना, बरहमबाबा को फूल–छत्र का दान करना, ब्राह्मण को दक्षणा देना, मुंडन–छेदन, सुन्नत, चलीसा, पित्तरों को पिंड का दान देना, बाबा कुसेसरनाथ को घी–दूध अर्पित करना, आदि कई धार्मिक रस्म, अंधविश्वास के रुप में अपनाये जाते हैं। यहाँ रस्म–रिवाज, शगुन को भी माना जाताा है और उसका पालन भी किया जाता है। बलचनमा की शादी के पहले शगुन के रुप में डोरा–सिंदूर आदि भेजा जाता है।

भैरव प्रसाद गुप्तजी के 'गंगा मैया' (1953) में ग्रामीण लोग धार्मिक अंधविश्वासों के पुजारी है। यहाँ के लोग ग्रहण में काशी जाकर नहाते हैं। काशी को पवित्र धर्म स्थल मानते हैं। अतः उनकी धारणा यही है कि काशी में नहाने से ग्रहण का प्रभाव कम होता है। इसी अंधविश्वास के सहारे मटरु जेल में भी अनेक सहुलियत हासिल करता है। वहाँ के वार्डर को 'गंगा मैया' तुम्हें बेटा देगी कहकर अपना काम करवा लेता है। मटरू गाँव का प्रगतिवादी इन्सान होकर भी शकुन–अपशकुन पर विश्वास रखता है। जब तोता दर्दनाक स्वर में चीखता हुआ मटरू के पास से गुजरता है तब वह उसे अपशकुन मानता है। इसी तरह यह लोग अंधविश्वास के साथ–साथ रस्म–रिवाज को भी गले लगाकर जी रहे थे।

नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में चित्रित रुपडली का ग्राम जन–जीवन अज्ञान, अशिक्षा से पूरी तरह ढका हुआ है, जिसके कारण समाज खोखला बना है। ईश्वरपूजा के समान लोग वृक्षपूजा और ब्रह्मबाबा की पूजा करते है। बरगद की पूजा करके स्त्रियाँ मिन्नते माँगती है; मनोरथ पूर्ण होने पर बंकरे की बलि दी जाती है। बारिश के लिए लोग देवताओं की उपासनाकरते है, ब्राह्मणों ने मिट्टी के ग्यारह लाख शिवलिंग बनाये, "एक रात जब मर्द जब सो गए तो गाँव भर की औरते दस–पन्द्रह गुटों में बँट गई। तालाब से मेंढ़क पकड़ लाये गए, उनहें ओखलियों में मूसलों से कुचला गया –– पण्डितों ने महीनों तक चण्डी–पाठ किये, साधकों ने एक–एक मन्त्र को लाखों जपा... सब व्यर्थ।"[5] बारिश के लोग

सब कुछ करते है साधक मंत्र को लाखों बार जपते हैं फिर भी बारिश नहीं होती। इसी अंधविश्वास के कारण लोग अस्पताल में जाकर दवा नहीं लेते। इसी तरह से कई अंधविश्वास रूपउली के लोग मानते है। यहाँ स्पष्ट है दवा की अपेक्षा भगवान की कृपा एवं दुवा पाना ही वे महत्वपूर्ण मानते है। यहाँ अज्ञान के साथ–ही–साथ उनकी मानसिकता, भावुकता, मजबूरी एवं कमजोरी भी स्पष्ट लक्षित होती है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' का 'मैला आँचल' (1954) रचना तो ग्राम जन–जीवन की एक अनोखी देन है। इसमें प्राचीनता और आधुनिकता का समन्वय पूरी बारीकी के साथ चित्रित किया गया है। 'मैला आँचल' के कथानक निर्माण में अंचलीय राजनीतिक, आर्थिक, सामजिक तथा प्राकृतिक समस्याओं की ऐसी–ऐसी सघन और संश्लिष्ट बनावट है कि इसके एक–एक रेशे कोअलग करना आसान काम नहीं है।"[6] यह डॉ.जवाहर सिंह का कथन बिलकुल सही लगता है। इसमें अनेक समस्याओं का चित्रण किया गया है। उसमें चित्रित अंधविश्वास की समस्या बड़ी भयावह लगती है। मेरीगंज के लोग डॉक्टर तथा अस्पताल के बारे में तरह–तरह की बातें करते हैं। दवा लेने से इन्कार भी करते हैं। बीमारी में ये लोग झाड–फूंक और मंत्र–तंत्र का प्रयोग करते है। तहसीलदार की बेटी कमली के शादी के बारे में भी अनेक अंधविश्वास फैलाये जाते है। गणेश की नानी को तो लोग डाइन मानते है और डाइन समझकर ही उसे मार डालते है। मेरीगंज के लोग धार्मिक अंधविश्वास में भी पूरी तरह जकड़े हुए दिखाई देते है। लोग मठ और महंत साहब पर बड़ी श्रध्दा रखते है। कमला नदी को एक देवता के समान पूजा जाता है, लोग सत्यनारायण की पूजा करते है। पूजा करने के पीछे यही धारणा है। महंथ साहब का बीजक जल जानेपर खुद महंथसाहब इसे अपशकून मानते है। इसीतरह अनेक अंधविश्वासों को साथ लेकर यहाँ के लोग अपना जीवनयापन करते थे।

इक्कीसवी सदी में भी ग्राम–जीवन में अभी तक अंधविश्वास की अधिक मात्रा दिखाई देती है। अज्ञान, अंधविश्वास, रुढ़ि–परंपरा के प्रति निष्ठा, विज्ञान का अभाव आदि इनके पीछे कारण लक्षित होते है। ग्राम जन–जीवन की मानसिक दुर्बलता इससे स्पष्ट होती है। बलि देना,

मनौतियां मनाना, बीमारी हटाना, किसी को देवता का अवतार मानना आदि के पीछे अनेक विश्वास एवं क्रिया-कर्म तथा मनोधारणा अंधविश्वास के प्रतीक ही है। इन लोगों को अशिक्षा ने ही उन्हें अंधविश्वास की ओर अधिक मात्रा में उन्मुख किया है। धर्म संबंधी गलत धारणा, मृत्यु का भय, पाप-पुण्य की मान्यताएँ आदि के कारण भी अंधविश्वास को बढावा मिल रहा है, ऐसा लगता है।

ब) <u>भूत-प्रेत-चुडैल-डायन संबंधी अंधविश्वास</u> :-

वैज्ञानिक प्रगति और सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव से दूर गाँव के मनुष्य का जीवन भ्रम, भय, भाग्य एवं अज्ञान से संचलित रहा है। मानसिक दुर्बलता और अंधश्रध्दा का समन्वित रुप भूत-प्रेत-चुडैल डायन ही है। ग्रामीण जनों का आज भी इसपर विश्वास रहा है। अतृप्त आत्मा, भूत-पिशाच्च, डायन, चुडैल बनकर रहती है ऐसी उनकी मान्यता है। गाँव में कोई अघटित भयावह, दानवी घटना घटती है तो उसका संबंध भूत-पिशाच्च के साथ जोडने की उनकी प्रवृत्ति है। ग्रामीण जन-जाति बीमारी दूर करने के लिए, संकट से मुक्ति के लिए भूत-प्रेत का आधार लेती है। अमरसिंह रणपतिया के अनुसार - "शिक्षा प्रचार और प्रसार से ऐसे विश्वासों में ढील आना स्वाभाविक है। कई अंधविश्वास सुसंस्कृत लोगों पर भी छाये हुए हैं। विज्ञान के चमत्कारों ने इस प्रकार के विश्वासों को अवश्य झकझोरा है।"[7] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में इसका यथार्थ चित्रण किया गया है ।

नागार्जुन के 'बलचनमा' (1952) में सुखिया पर कभी-कभी भूत सवार होता तो वह चीख मारकर रो पडती थी। वह नंगी होकर जीभ निकालती हुई कहती - "ही ही ही ही मैं काली हूँ, पोखर पर जो बौना पीपल है उसी पर रहती हूं, खा जाऊँगी समूचा गाँव। बकरा दो बकरा ....।"[8] मुखिया का भूत उतारने के लिए जब दामो ठाकुर को बुलाया जाता तब वह शांत होती है। बलचनमा इसके बारे में कहता है - भूत या प्रेत अक्सर बाँझ औरतों को ही पकड़ता है। सुखिया की मानसिक कमजोरी की वजह से ऐसी हरकते वह करती है ऐसा लगता है। मगर गाँववालें इसे भूत-पिशाच्च का रुप देते है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' में भी इसका चित्रण हुआ है। नीलहे साहब डब्लू जी मार्टिन ने मेरीगंज का नाम अपनी नवेली दुल्हन मेरी के नाम से रखा। मेरी जडैया बुखार में मर जाने पर उसको कोठी के बगीचे में दफना दिया। अग्रेजी फूलों के जंगल के मध्य मेरी की कब्र आज भी है। कोठी की इमारत टूट फूट गई है जहाँ लोग दिन में भी जाते हुए भय खाते हैं। उसे भुतहा जंगल के नाम से पुकारते है। उसके संबंध में अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है – ततमा टोले का नन्दलाल एक बार ईट लाने गया था, ईट में हाथ लगाते ही खत्म हो गया था। जंगल से एक प्रेतनी निकली और नन्दलाल को कोडे से पीटने लगी – साँप कोड़े से। नन्दलाल वही ढेर हो गया। बगुली की तरह उजली प्रेतनी।[9] इसी तरह गणेश की नानी को सारा गाँव डायन मानता है। "डाइन है। तीन कुल में एक को भी नहीं छोडा। सबको खा गयी। पहले भतार को, इसके बाद देवर – देबरानी, बेटा बेटी, सबको खा गयी। अब एक नाती है, उसको भी चबा रही है।"[10] मेरीगंज गाँव का हीरु अपने बेटे को बचाने के लिए गणेश की नानी को डाइन मानकर उसकी हत्या कर देता है। यह सब वह ज्योतिषी के कहने पर करता है। केवल एक अंधविश्वास के कारण ही गणेश की नानी मारी जाती है और गणेश बेसहरा हो जाता है। गाँव के लोगों की कमजोर मानसिकता के कारण ऐसी धारणा बनी है।

यहाँ यही स्पष्ट होता है कि भूत–प्रेत–डायन सबंधी विचारधारा अज्ञान, अशिक्षा, मानसिक दुर्बलता एवं विकृति का प्रतीक होने पर भी ग्राम जन उसपर विश्वास रखते हैं तथा अपनी विरासत मानकर पूजा भी करते है। इसी के बल पर अमानवीय कार्य भी करते हैं मगर इसमें अंधविश्वास की अधिकता ही है। भूत–डायन आदि का प्रभाव कम करने के लिए वे मंत्र–तंत्र का आधार लेते हैं।

क) <u>मंत्र–तंत्र, झाड–फूंक, जडी–बुटी, जादूटोणा संबंधी अंधविश्वास</u> :–

ग्रामीण जन अज्ञानी, अंधश्रध्द होने के कारण भूत–पिशाच्च की मान्यताएँ उनमें रही है। परिणामतः उस पर उपाय के रुप में मंत्र–तंत्र–जादूटोना तथ बीमारी दूर करने के लिए झाड–फूंक, जडी–बूटी का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक ज्ञान, विज्ञान, चिकित्सा सुविधा का अभाव होने के कारण इसे बढावा मिल रहा है। इन लोगों को दवा की अपेक्षा जड़ी–बूटी के प्रयोग पर अधिक विश्वास है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों के आधार पर गाँव में स्थित मंत्र–तंत्र–जादूटोना, जडी–बूटी, झाड–फूंक संबंधी मान्यताओं में से निर्मित अंधविश्वास पर सोचेगे –

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948) में रतिनाथ जुगल कामति के कटोरा चलाने की विद्या को घबराकर चोरी की हुई किताबें वापस अपनी जगह रख देता है। उसको पूरा विश्वास है कि जुगल कामति अपनी चोरी पकड़ लेगा।

नागार्जुन के 'बलचनमा' (1962) में सूखिया पर जब भूत सवार होता है तब छोटी मालिकाइन झाड–फूंक, पूजा–पाठ, टोना–टापर करने वाले ओझा दामो ठाकुर को बुलाती। दामो ठाकुर आते ही ओझा झाडना, फूँक मारना शुरु कर देता। इसी तरह नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में बाढ के दिनों में चार आदमी मर गए लेकिन उस समय मंत्र–तंत्र, झाड–फूँक करनेवाले ओझा गुणी दूसरें गाँव से लोग नहीं मँगवा सके इसका उन्हें बहुत अफसोस हुआ। बाढ के बाद गाँव में बीमारी फैल गयी लेकिन किसी ने भी दवा का नाम नहीं लिया। सारे गाँव के लोग बीमारी मिटाने के लिए पंडितों और आझो–गुणियों के ही पास जाते थे और बीमारी हटाने के लिए मंत्र–तंत्र, झाड–फूंक का प्रयोग करते है। इसी अंधविश्वास के कारण कई लोगों की जान चली जाती लेकिन अज्ञानता के कारण ये ग्राम–जन समझ नहीं पाते।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' में भी इसी अंधविश्वास पर यथार्थ रुप से प्रकाश डाला गया है। मेरीगंज गाँव में बीमारी फैलने पर लोग मंत्र–तंत्र, झाड–फूँक से इलाज करते थे।

तहसीलदार की बेटी कमली एक बार बेहोश होने पर ज्योतिषीजी ने जन्तर बनवाकर दिया, झाड–फूँख भी किया था लेकिन कुछ असर नहीं हुआ। कमली के शादी के बारे में भी अनेक अंधविश्वास प्रचलित है। पहली जगह कमली की शादी की बात पक्की होने पर लडके की माँ मर गई। दूसरी जगह ठीक हुई तो उसके घर में आग लग गई, तीसरी बार तो खुद लडका ही मर गया। इसी कारण कोई भी लडका उसके साथ शादी करने के लिए तैयार नहीं होता।[11] इसीतरह और भी कई अंधविश्वास यहाँ प्रचलित है।

यहाँ यही स्पष्ट होता है कि जो काम डॅक्टर एवं उनकी दवाइयाँ नहीं कर पाती, वही काम इन लोगों के झाड–फूँक से होते है। इन लोगों के अज्ञान और अशिक्षा के कारण ये अंधविश्वास आज तक जीवित रह चुके हैं। धर्म, ईश्वर, भूत–पिशाच्च आदि के बारे में ये अंधविश्वास इन लोगों में निवास कर रहें है। आज शिक्षित, स्वयंसेवी लोग, विविध संस्था इन लोगों में स्थित इन अंधविश्वासों को हटाने का काम कर रहे है।

ड) <u>शकुन–अपशकुन संबंधी अंधविश्वास</u> :–

ग्रामीण जन अंधविश्वासी होने के कारण शकुन–अपशकुन पर विश्वास रखते है। अपने जीवन में घटनेवाली हर एक घटना का भविष्य के साथ संदर्भ जोड देती है। आलोच्य उपन्यासकारों ने इसपर भी सोचा है –

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948) में जयनाथ अपने बेटे रतिनाथ को विद्या का आरंभ बृहस्पतिवार को करने के लिए कहता है। अर्थात् जयनाथ बृहस्पतिवार को शिक्षा का आंरभ शुभ दिन मानता है। भैरवप्रसाद गुप्तजी के 'गंगा मैया' (1953) में मटरू भी इसी शकुन–अपशकुन पर विश्वास करता है। एक आफत का मारा तोता मटरू के सिर से दर्दनाक स्वर में रें–रें चीखता हुआ निकला तो महरु को यह अपशकुन लगा कि उसकी बहन किसी आफत में फँस गई है। नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में जैकिसुन की दादी अकाल के बारे में अपने पति से कहती है – "देखते हो न? इस बार फागुन में ही कैसी मनहुसी छा

गई है। रात को काला कौआ चीखता रहता है कई–कई। दिन के समय गीदड़ हुआँ–हुआँ करता हैं – अब के भारी अकाल पडेगा देख लेना।"[12] यहाँ शकुन–अपशकुन का संबंध भविष्य में घटनेवाली घटना से जोडने की मानसिकता यहाँ बनी है, जो अज्ञान का प्रतीक है।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' (1954) में मेरीगंज के लोग शकुन और अपशकुन को बहुत मानते है।इसमें खुद धार्मिक व्यक्ति भी आते है। महंथसाहेब का बीजक जल गया तो महंतसाहेब इसे बडा अपशकुन, अमंगल मानते है। इस पाप का दण्ड भी भोगना पडेगा ऐसा कहकर अपना शरीर त्याग देते है। इसीतरह हरगौरी नया तहसीलदार बनने पर शुभ दिन देखकर बही–बस्ता को हाथ लगाता है। यहाँ स्पष्ट है पढ़े–लिखे व्यक्ति भी शकुन–अपशकुन पर विश्वास रखते है। तहसीलदार इसका उदाहरण है।

ग्रामीण लोग अज्ञानी, अशिक्षित, विज्ञान या वैज्ञानिक विचारों से दूर, धर्म–जाति, देवी–देवता के गहरे प्रभाव से प्रभावित भगत–पंडित–मंत्रिकों के दबाव में दबे हुए होने के कारण शकुन–अपशकुन पर गहरा विश्वास रखते है; यहाँ यही स्पष्ट हुआ है।

आलोच्य उपन्यासों में इसके अतिरिक्त बलि चढाना, मनौतियाँ माँगना, व्रत या उपवास रखना, पूजा–पाठ करना, संकट से मुक्ति के लिए प्रार्थना करना, शरीर गोंदना, बरखा बरझने के लिए आराधना करना, मंत्र–पाठ करना, शिवलिंग की पूजा करना, पेड की पूजा करना, पापमुक्ति के लिए देवी देवताओं की यात्रा करना तथा प्रायश्चित करना आदि के बारें में अंधविश्वास देखने को मिलते हैं।

आज के ग्रामीण युवक शिक्षित हो उठे हैं इसीकारण इन अंधविश्वासों की कड़ी में कुछ ढ़ील अवश्य दिखाई देती है। साथ–ही–साथ सेवाभावी संस्था, विज्ञान जत्था, अंधविश्वास निर्मूलन समिति के प्रयास से गाँव में स्थित अंधविश्वासों को दूर करने का प्रयास हो रहा है।

इ) पाप–पुण्य संबंधी अंधविश्वास :–

भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान दिया है तथा जीवनक्रम में घटनेवाली घटनाओं को पाप–पुण्य, अच्छी–बुरी आदि दृष्टि से भी देखा गया है। पाप–पुण्य संबंधी सामान्यतः यह धारणा है, जो व्यक्ति सत्कर्म करता है वह इहलोक तथा परलोक में सुख प्रापत करता है एवं जो व्यक्ति दुष्कर्म करता है वह कष्ट प्राप्त करता है। संसार में पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी और न हो सकती है। "संसार में पाप कुछ भी नहीं हैं, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है।"[13] अज्ञानी, अनपढ़ ग्रामीणों का किसी एक देवता पर विश्वास नहीं होता बल्कि विपत्ति को टालने के लिए वे सभी देवी–देवताओं को एक साथ मनाने लगते है। संकुचित एवं संकीर्ण धार्मिक विश्वासों से उनकी दृष्टि परे होती है।

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' में जयनाथ अपने ब्राह्मण धर्म के अनुसार प्रातःस्मरण संध्यातर्पण, पंचदेवता, सप्तशती, विद्यापति की महेशवानी, भगवान शालीग्राम की पूजा बड़ी श्रध्दा से करते है। शुभंकरपूर और तरकुलवा गाँव में लोगों की यह श्रध्दा थी कि, अगर किसी से बड़ा पाप हो जाए, ब्रह्महत्या हा जाए, अवैध मातृत्व मिले तो उसे प्रायश्चित के लिए सिमरिया घाट जाना चाहिए। धर्म के अनुसार ब्राह्मण को हल जोतना, गाड़ी चलाना या गाड़ी पर चढ़ना भी मना है। शुभंकरपूर के जमींदार अपनी माँ के श्राध्द पर प्रत्येक पंडित का आने जाने का खर्चा और उपर से एक सौ एक की बिदाई देना। बाहर के इन पंडितों द्वारा इन्हें 'धर्म–दिवाकर' की उपाधि प्राप्त करना[14] तथा गौरी की माँ का मंगल को उपवास रखना, गौरी के गर्भ गिराने के ग्यारहवे दिन सत्यनारायण की पूज' करना, पूजा के अवरसपर गौरी द्वारा स्वच्छ सफेद शांतिपुरी धोती पहनना, पंद्रह ब्राह्मणों को खाना खिलाना आदि सब धार्मिक अंधविश्वास पाप–पुण्य से जुड़े है।

नागार्जुन की रचना 'बलचनमा' (1952) में गाँव के लोग फसल अच्छी आने पर बकरे की बली देवी के सामने देते है। इतना ही नहीं शादी जैसे पवित्र अवसर पर भी लोग बकरे की

बलि देते है। यहाँ के लोग अपनी अच्छी फसल आने के लिए, बारीश के लिए बाढ़ न आए इसलिए मनौति के रुप में काली माई को दो बकरों की बलि देना, बरहम बाबा को फूल–छत्र, पित्तरों को गया का पिंड दान करना, बाबा कुसेसरनाथ को घी दूध का दान करना, आरती उतारना, ब्राह्मण को दान देना, उसी तरह मुंडन, छेदन, सुन्नत, सराध और चलीसा आदि धार्मिक परंपराओं को लोग जी–जान से पालते हैं।

भैरवप्रसाद गुप्तजी के 'गंगा मैया' (1953) में मटरू गंगा मैया के प्रति श्रध्दा रखता है तथा कसम से समय, आशिष देते समय केवल गंगा मैया का नाम लेना पुण्य मानता है। जेल के वार्डर को गंगा मैया तुम्हें बेटा देगी कहकर अपनी श्रध्दा प्रकट करना आदि घटनाएँ पाप–पुण्य को स्पष्ट करती है। अशिक्षा और अज्ञानता के कारण ग्रामीण लोग इसे समझ नहीं पाते ऐसा लगता है।

नागार्जुन ने 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में रूपउली गाँव के अनेक धार्मिक अंधविश्वास दिखाई देते है। रूपउली गाँव के लोगों द्वारा अनेक देवी–देवताओं की उपासना करना, बरगद के पेड़ के नीचे मिट्‌टी के ग्यारह लाख शिवलिंग की पूजा करना आदि का पाप–पुण्य के अंतर्गत रखा जाता है।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' (1954) में मेरीगंज गांव में वर्षा न होने पर गुआर टोली और कायस्थ टोली के बीच के मैदान में सब स्त्रियाँ एकत्र होती है और 'जाट्‌–जट्टिन' का खेल आरंभ कर देती है। इसीतरह गांव के समीप बहनेवाली कमला नदी गाँववालें के लिए कमला मैया है, जिसका उनके जीवन में अत्याधिक महत्त्व है। इस नदी में केवल बरसात में पानी भरता है। बाकी दिनों उसके बड़े–बड़े गढ़ों में पानी भरा रहता है – "पौष पूर्णिमा के दिन इन्हीं गढ़ों में कोशी–स्नान के लिए सुबह से शाम तक भीड़ लगी रहती है।"[15]

यहाँ स्पष्ट है कि कई अंधविश्वासों में पूरा ग्राम-जीवन अटका हुआ दिखाई देता है। आज ग्रामीण जन-जीवन की स्थिति में परिवर्तन आया है। ज्यों-ज्यों गाँवों में शिक्षा का प्रसार हो रहा है, ग्रामवासी शहरों के संपर्क में आ रहे हैं – नये विचारों और प्रभावों को समझने के नए तौर-तरीकों से प्रभावित हो रहे हैं, त्यों-त्यों अंधविश्वास को त्याग रहे है। 21वी शती पर दस्तक देनेवाले मानवी जीवन में आज भी अंधविश्वास रहे हैं, ग्रामवासी अज्ञानी होने के कारण वे इसी के शिकार बने हैं लेकिन आज इसमें परिवर्तन आ रहा है। गति धीमी ही सही लेकिन यह परिवर्तन उपादयदायी है। जब तक गाँवों में नौकरी, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन प्रसार माध्यम की सुविधा उपलब्ध नहीं होगी तब तक अंधविश्वास का प्रभाव रहेगा ऐसा लगता है।

शोषण की समस्या :-

भारतीय समाज व्यवस्था में जातिव्यवस्था का स्थान महत्वपूर्ण है। जातीय व्यवस्था के कारण समाज की एकता खंडित हो रही है। समाज में ऊँच-नीच, सवर्ण-दलित आदि कई भेद हो गए। इस सामाजिक भेदाभेद के कारण शोषण की समस्या को प्रश्रय मिला। ऊँच-नीच भेदाभेद के कारण समाज का ऊपर का तबका नीचले सामाजिक तबके का शोषण करता रहा है। "भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था ने शक्ति और धन के आधारपर सवर्णों को इज्जत सम्मान प्रतिष्ठा के अधिकारी बनाया है। ग्रामों में तो दलित युवतियाँ उनके पंजे में फँसकर उनके विलास की सामग्री बनती है।"[16] जातीय व्यवस्था का वर्णव्यवस्था के कारण दलितों का शोषण हो रहा है। इसमें केवल दलित ही नहीं आते, तो जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर है ऐसे अनेक परिवार इसमें आते है जिससे निम्न वर्ग, मध्य वर्ग और उच्च वर्ग की निर्मिती होती है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रधान आधार कृषि और तत्संबंधी छोटे-मोटे उद्योग धन्दे है। लेकिन "भारतीय कृषक-समाज जमींदार और उसके पटवारी, कानूनगो, कारिन्दा, मुखिया, सरकार और उसके चौकीदार, दारोगा, कर्मचारी, पुरोहित, महन्त और महाजन तथा साहुकार सबकी सहकारी खेती है, नरमचारा है। सबकी आपस में मिली भगत है और उनकी एक सुसंगठित सुनियोजित व्यूह

रचना है।"[17] यहाँ स्पष्ट है ग्रामीण कृषक समाज का सुनियोजित रुप में शोषण हो रहा है। पारसनाथजी के मत से ही भारतीय कृषक समाज की स्थिति यथार्थ रुप से स्पष्ट होती है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में भी इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। ग्रामीण सामान्य कृषक जीवन रुढ़ि-परंपरा, अंधविश्वास, जातिव्यवस्था के साथ-साथ शोषणता में पिसता जा रहा है। उनका शोषण केवल जमींदारों के माध्यम से ही नहीं तो पुलिस, भ्रष्ट नेता लोग, साहुकार, महाजन, धार्मिक व्यक्ति द्वारा हो रहा है। ग्रामीण जन-जीवन की समस्याओं के अंतर्गत उपन्यासकारों ने इस पर कहाँ तक सोचा है, उस पर हम प्रकाश डालेंगे –

अ) <u>जमींदारों द्वारा शोषण की समस्या</u> :-

हिन्दी के स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में चित्रित जमींदारी वर्ग अत्याचारी तथा सामन्ती प्रवृत्तियों को बनाये रखने की कोशिश करता हुआ दिखाई देता है। कानून से जमींदारी प्रथा पर रोक लगाई है मगर जमींदारों की प्रवृत्ति ऐंठन अभी भी समाज में दिखाई देती है। उनकी नई-नई प्रवृत्ति, शोषण की नीति, दमनचक्र के हथकंडे आदि के दर्शन उपन्यासों में होते हैं, जैसे, किसानों की जमीनें हड़प करना, उनसे बेगारी लेना, मजदूरी देने से इन्कार करना, मजदूरों-किसानों की पिटाई करना, उनकी नारियों की अस्मत दिन दहाड़े लूटना, उन पर झूठे आरोप लगाकर उन्हें जेल भेजना, उनका कत्ल करना, गंदी राजनीति का सहारा लेना, पुलिसों को अपना पक्षधर बनाकर निम्न वर्ग पर जुल्म करना आदि कई रुपों में ग्रामीण लोगों का शोषण जमींदार आज भी कर रहे हैं। इसका यथार्थ चित्रण इन उपन्यासों में दिखाई देता है।

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948) में कुल्ली राउत बेगार प्रथा का शिकार है। रतिनाथ उसके बारे में सोचता है – "हमारा जूठन खाकर, हमारा पहिरन पहनकर उनके बच्चे पलते हैं। उन्हें कभी स्कूल और पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिलता। क्या मर्द, क्या औरत – इन लोगों का जीवन बड़ी जाति वालों की मेहरबानी पर निर्भर है।"[18] कूल्ली राउत से काम करवाने पर भी तो उसे कुछ नहीं दिया जाता, या काम के बदले बहुत थोडा दिया जाता है। इसप्रकार बेगार-प्रथा के द्वारा जमींदार श्रमिकों का शोषण करते रहते हैं। तो शुभांकरपूर के

जमींदार दुर्गानंदन सिंह, जो किसानों के साथ लेन–देन का कारोबार करते हैं, आसपास की पाँच कोस जमीन पर उनकी छत्र–छाया है और ऊपर से व्याज की कमाई, व्याज की दर प्रतिमास डेढ़ रुपया सैंकड़ा थी। राजाबहादुर पुराने अँगुठे को साल–साल नया करवाते जाते, सूद भी मूल बनती जाती। चक्रवृध्दि का क्रम राजाबहादुर की शरीर वृध्दि के लिए उन्हें चहबच्चा बनना पडा था।

नागार्जुन के 'बलचनमा' (1952) क नायक खुद बलचनमा इस जमींदारी शोषण का शिकार था। मालिकाइन द्वारा बलचनमा को अपने पुत्र को रुलाने के आरोप में गालियाँ देना, भैंस की घास लेकर घर देर से पहुँचने पर क्रोधवश झाड़ू से पीटना, सड़ी हुई चीजें खाने को देना, न खाने पर खाना बंद करना, माँ को दिये गये बारह रुपये का सूद लेते रहना, माँ की चापलूसी करके उसकी जमीन आम के लिए बिना रसीद से लेना। मालकिन की नौकरानी तक का उसे कोठिया कहकर पुकारना तथा व्यर्थ काम बताते रहना, मालकिन का चढ़े दामों पर धान बेचना, ब्राह्मणी और करीमबख्श को देते समय छोटे तथा लेते समय बड़े बाट से धान तोलना, रातभर मालिक द्वारा बलचनमा से अपना शरीर दबवाना, उसे सोने न देना, मृत्यु के समय दादी की इच्छा पूर्ति के लिए बलचनमा को मछली ले जाने पर बलचनमा की पीठ दागना इसीतरह बलचनमा पर कई जुल्म होते रहते है। बलचनमा के पिता को एक साधारण अपराध (बाग से आम तोड़ लेने) के कारण पाशविक अत्याचारों का सामना करना पडता है। बलचनमा इसका वर्णन करते हुए कहता है – "मालिक के दरवाजें पर मेरे बाप को एक खंभेली की हरी कैली निशान उभर आये हैं ..... चेहरा काला पड गया है। होंठ सूख रहे है। अलग कुछ दूर पर छोटी चौकी पर यमराज की भाँति मझले मालिक बैठे हुए हैं।"[19] इसतरह उपन्यासकार ने प्रारंभ से ही जमींदारों के नृशंस कार्यो एवं उनके द्वारा किए गए शोषण का चित्रण किया है। जब जमींदार के कारिंदें बलचनमा के पिता लालचंद को बाँधकर मार रहे है तो उसकी माँ मालिक के सामने गिड़गिड़ा रही है, पुत्र और पुत्री भयातुर रहती है। कुछ दिनों बाद बलचनमा के पिता की ज्वर से मृत्यु होती है। बलचनमा को मालिक के पास भैंस चराने का काम मिलता है।

बलचनमा के पिता के मरने के बाद मँझला मालिक बलचनमा की माँ को बारह रुपये कर्ज देकर सारे कागज पर अंगूठे का निशान लगवा लेता है। पैस देते-देते उसका सूद भी पूरा नहीं हो पाता। मूल तो ज्यों का त्यों रहता है। मँझले मालिक बलचनमा का खेत लेता है। इसप्रकार की क्रूरता, शोषण एवं हथकंडे जमीदारों के लिए आम बात है और इन्हीं के बल पर वे अपने शोषण के साम्राज्य का विस्तार करते रहते हैं। जमींदार केवल बलचनमा पर जुल्म करके संतुष्ट नहीं हुए तो उसकी छोटी बहन के साथ जबरदस्ती करने का प्रयत्न करते है। इसी तरह ये बडे जमींदार लोग केवल कृषकों के जीवन से ही नहीं तो उनकी अस्मत से भी खेलते रहे है। सिर्फ जमींदारों के चंगुल में किसान वर्ग फँसा था ऐस नहीं तो किसान महाजन वर्ग के चंगुल में इतना जकड़ जाता था कि मरने के बाद ही उसे ऋण से मुक्ति मिलती थी। बलचनमा इसके बारे में कहता है – "कर्ज और गुलामी में सिर से पैर तक डूबा हुआ यह आदमी मलेरिया की हड्डी तोड बीमारी से गल-पचकर जब मरा तभी छुटकारा पा सका।"[20] इसीतरह गरीब किसान जमींदार, महाजन के हाथों में पड़कर पूरी तरह टूट चुके थे। ऋण से मुक्ति न होने के कारण धीरे-धीरे जमीन भी कृषकों के हाथों से निकलने लगी। गरीबी ने किसान जीवन पूरी तरह जकड़ लिया इस बारे में बलचनमा के विचार बडे मार्मिक लगते है – गरीबी नरक है भैया, नरक। चावल के चार दाने छीटकर बहेलिया जैसे चिड़ियों को फँसाता है उसी तरह ये दौलतवालो गरजमंद औरतों को फँसा मारते है। इसप्रकार पूँजीपति वर्ग निरंतर किसान तथा नारी का शोषण करता रहा है इसीकारण किसान हमेशा पिछड़े रहे है।

भैरव प्रसाद गुप्तजी के 'गंगा मैया' (1953) में किसानों और जमींदारों के पारस्परिक संघर्ष का चित्रण किया है। इस उपन्यास के बारे में डॉ.प्रभासचन्द्र 'महता' के विचार बड़े मौलिक लगते है – "अज्ञान-ग्रस्त गावों का पारस्परिक वैमनस्य, बिरादरी वालों की अड़ंगेबाजी, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी का संघर्ष, दारोगा, पुलिस और चौकीदार आदि के हथकण्डे और रिश्वतखोरी तथा निम्नवर्गीय नैतिक नियम की सहज-स्वाभाविकता एवं उच्च वर्गीय नीति-नियमों से परिपालित मध्य-वर्गीय रीति-रिवाजें के खोखलेपन का स्वरुप भली-भाँति 'गैगा मैया' में चित्रित

हो पाया है।"[21] जमींदार गंगा तट की भूमि के जंगालों की लकड़ी निर्धन किसानों को बेचकर लाभ उठाता है तथा गंगा तट की भूमि पर अपना अधिका जमा देते है। मटरू किसी भी जमींदार की पर्वाह नहीं करता। इसीकारण जमींदार उसके सामने कुछ नहीं कर पाते लेकिन मटरू अपने जैसा धनवान, शक्तिशाली हो जाए इस ड़र से उसे झूठे चोरी के जुल्म में तीन साल के लिए उसे जेल भेज दिया जाता है। इसप्रकार प्रस्तुत उपन्यास में जमींदारों की पूँजीवादी मनोवृत्ति एवं दमन प्रवृत्ती का यथार्थ चित्रण लेखक ने प्रस्तुत किया है।

'बाबा बटैसरनाथ' (1954) में नागार्जुन जी ने वट वृक्ष के माध्यम से पीढ़ियों दर पीढ़ियों में जमींदारों द्वारा निर्धन जनता पर किए गए अत्याचार एवं शोषण की कथा प्रस्तुत की है। सौ वर्ष पूर्व पंडित चन्द्रमणि के दुश्चरित्र घेवते बलिभद्दर से कैफियत तलब करने पर राजा बहादुर के सिपाहियों ने जीवनाथ के दादा शत्रुमर्दनराय को लाल चीटों के छत्ते से कटवाकर कोड़े लगवाये थे। बाद में जमींदारी उन्मूलन के प्रारंभ होने पर जमींदार सार्वजनिक उपयोग की भूमियों के धीरे-धीरे बेच देते है। लोभी किसान टुनाई पाठक और जैनरायन झा ने राजबहादुर से बरगदवाली भूमि और पोखर की बन्दोबस्ती ले ली थी। वह बरगद को कटवाना चाहते थे। दरभंगा के महाराजा, दरबारियों और अफसरों को सौगत स्वरुप फल भेजने की अपेक्षा बेचकर लाभ कमाने लगे। इनके बारे में बाबा बटेसरनाथ कहते है, "जाते-जाते भी ये राजा, जमींदार, भूस्वामी, सामन्त चाँदी काट रहे है। घोडे की कीमत पर वे हाथी हटा रहे हैं, बछडे की कीमत पर घोडा, और बछड़ा?"[22] डेढ़ सौ रुपये के लोभी में पाठक गूंगे चमार की हत्या करवाकर जीवनाथ राय, सरगुज महतो, जैकिसुन यादव, लछमनसिंह और सुतरी झा पर इल्जाम लगाते है। जमींदार निम्न जाति पर अनके तरह के जुल्म करते थे। इस बारे में बाबा बटेसरनाथ जैकिसुन को बताते है – "छोटी औकात के और नीची जात के लोगों को तो खैर वह कीड़े-मकोडे समझता ही था, अच्छी-अच्छी हैसियत के भले खासे व्यक्तियों से वक्त, बेवक्त नाक रगड़वाता था जमींदार।"[23] इसप्रकार तरह-तरह के जुल्म करके जमींदार अपना मुनाफा देख रहे थे। जमीन हड़पना, चमार की हत्या करना, धनशक्ति का गलत उपयोग

करना, गरीबों को जेल भेजना आदि कई शोषण के हथकंडे अपनाए जाते थे।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' (1954) में जमींदारों की स्वार्थी मनोवृत्ति के कारण जनता की स्थिति शोचनीय रही है। अनाज की कीमतें बढ़ने का लाभ जमींदार उठाते है और ग्रामीण जनता निर्धन बनी रहती है। मेरीगंज में सामान्य व्यक्ति को विषमताओं और अन्याय के बीच रहना पड़ता है। यहाँ सबसे अधिक शोषण संथाल जाति का होता है। इनके परिश्रम से मेरीगंज की सैकड़ों बीघे जमीन आबाद करवा ली गई लेकिन फिर भी इन्हें गाँववालों के साथ बसने नहीं दिया जाता। जब भी वे अन्याय और शोषण के विरुध्द आवाज उठाने की कोशिश करते है, विद्रोह की दिशा में कदम उठाते हैं तब उन्हें जोर–जुल्म तथा कानून दोनों ही तरफ से कुचल दिया जाता है। संथालों के समान गाँव में रहनेवाले मजदूरों की स्थिति है। उनका भी नियमित शोषण होता है। उनको सवा रुपये मजदूरी मिलती है, जिसमें एक व्यक्ति का पेट भरना भी मुश्किल है। कपड़े के अभाव में ये लोग अर्धनग्न रहते है। औरतें आँगन में काम करते समय एक कपड़ा कमर से लपेटकर काम चलाती है, तो बच्चे बारह वर्ष तक नंगे ही रहते है।[24] गरीबों के लिए गाँव में जीना दुगर हो गया है। जमींदार अधिक धनी हो गए। गाँव में जमींदार, शासन अधिकारी आदि लोग किसानों–मजदूरों का शोषण करते ही है। साथ–ही साथ महाजन भी सामान्य वर्गीय व्यक्ति का शोषण करते है। सहदेव मिसर गाँव का महाजन है। वह किसानों–मजदूरों की सादे कागज पर टीप ले लेता है और फिर उसके हाथ मनमानी करने का अधिकार जा जाता है। गाँव के मुखिया मालिक लोग मजदूरों और किसानों को लूटते है। मालिक बहिखाता लेकर बैठे जाते है, पास में कजरोटी खुली हुई रहती है। धान नापनेवाला धान की ढ़ेरी से धान नापता है। बादरदास को एक मन। सो नाये ततमा को तीज पसेरी ...। सादा कागज पर अंगूठे का निशान देते जाओ। भादो महीने में भरे धान चुका दोगे तो ज्योढ़ा, यानी एक मन का डेढ़ मन। यदि अगहनी फसल में चुकाओगे तो डेढ़ मन का तीन मन सीधा हिसाब है। तहसीलदार साहब के खम्हार के साथ ही गाँव के और किसानों का खम्भार खुलता है। तहसीलदार साहब का खम्हार बड़ा खम्हार कहलाता है। तहसीलदार के पहले कोई भी खम्हार नहीं खोल सकता। इसप्रकार ग्रामीण को इन सब प्रकार के शोषणों के

बीच रहते हुए तिल–तिल नष्ट होने के लिए विवश होना पड़ता है।

इसप्रकार यहाँ स्पष्ट होता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में तत्कालीन समाज व्यवस्था, जमींदारों द्वारा शोषण, महाजनों द्वारा शोषण की व्यथा–कथा, उनके अमानवीय अत्याचारों के यथार्थ दर्शन होते है। किसानों की जमीने हड़प कर लेना, सूद के बदले उनसे बेगारी लेना तथा उनपर मनचाहे अत्याचार करना, कर्ज वापस न मिलने पर किसानों की पीटाई करना, किसानों के औरतो की अस्मन लूटना, झूठे इल्जाम लगाकर किसानों को जेल भेजना, उनकी फसल नष्ट करना तथा किसानों पर हमेशा दबाव रखना आदि विविध आयामों के माध्यम से गरीब किसानों का, मजदूरों का शोषण जमींदरों, महाजनों द्वारा किया जाता है, यह यहाँ लक्षित होता है। किसानों के अज्ञान, अर्थाभाव और अशिक्षा का फायदा उठाकर ही यह शोषण चक्र निरंतन जारी रहा है। आज इसमें काफी बदलाव आया है लोग शिक्षित हो रहे है, अन्याय के खिलाफ आवाज उठा रहे है। शैक्षिक प्रगति और प्रगतिवादी विचारधारा ने इन लोगों में विद्रोह की भावना का निर्माण किया है। आलोच्य उपन्यासों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है। शिक्षा, नौकरी, कर्ज सुविधा प्राप्त होगी तो यह शोषण का दमनचक्र कम होगा ऐसा लगता है।

ब) <u>पुलिस द्वारा शोषण की समस्या</u> :–

भारतीय राजनीति के नियामक तत्व में सरकार और राजनीतिक दल महत्वपूर्ण तत्व लक्षित होते है। सरकार अपनी व्यवस्था में पुलिसों की सहायता लेती है। सुरक्षा, शांति, बंधुता आदि कई कार्यो में पुलिस सरकार मी मद्द् करती है। सामान्य जनता की रक्षा करना, आपत्ति में उनकी सहायता करना, समाज में शांति स्थापित करना आदि कई प्रकार के कार्य करनेवाली यह व्यवस्था ग्रामीण जन–जीवन के शोषण का आयाम बनी है। अशिक्षित, अज्ञानी ग्रामीण लोगों का पुलिसद्वारा किस रुप में शोषण होता है, इसका चित्रण हिन्दी के स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में हुआ है। जमींदार और पुलिस की दोस्ती होना, राजनीतिक नेता और पुलिसों की

सांठ–गाँठ होना, समाज विघातक ताकदों से पुलिसों की मिली–भगत होना, धार्मिक व्यक्ति के साथ पुलिसों की दोस्ती होना आदि के कारण सामान्य जनता का पुलिसद्वारा शोषण हो रहा है। साहित्यकारों ने उसे अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। आलोच्य उपन्यासों के आधार पर पुलिसद्वारा शोषण की समस्या पर विचार करेंगे –

भैरवप्रसाद गुप्त जी के 'गंगा मैया' (1953) में पुलिसद्वारा शोषण का यथार्थ रुप नजर आता है। दीयर में मटरू जमीदारों को भारी पड़ रहा है यह जानकर भी जमींदार खुद कुछ नहीं कर पाते। मटरू जमींदार को माननेवाला नहीं था। मटरू अपनी मेहनत के बल बुते पर जी रहा था। उसे जमींदारों के अधिकार के बारे में द्वेष था वह किसी को भी श्रेष्ठ नहीं मानता और न ही उनका अधिकार स्वीकार करता है। यह देखकर जमींदार मटरू को चोरी के झूठे जूल्म में तीन साल के लिए जेल भेज देते है। पुलिस–जमींदारों की दोस्ती थी इसलिए मटरू को जेल जाना पड़ा। इसीतरह गोपी की भाभी लापता होने पर दारोगा साहब गोपी पर मन चाहे जुल्म थोंप देते है तब गोपी पुलिस को रिश्वत देकर कहानी खत्म करता है। पुलिस की इसी भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति के कारण सामान्य वर्ग पीसा जा रहा था।

नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में जमींदारों और पुलिसों की मिली भगत से सामान्य व्यक्ति का शोषण होता रहता है। रूपउली के जमींदार पाठक और जैनरायन एक गूंगे चमार की हत्या करते है और सारा इल्जाम जीवनाथ, सरजुग महतो, जैकिसुन, लछमनसिंह और सुरती झा पर थोंपा जाता है। हत्या के अभियोग में इन पाँचों को गिरफ्तार किया जाता है। इसी तरह पुलिस और जमींदारों का बड़ा मेल–जोल था। जेल से छुटने के बाद इन पाँचों ने बडे जोश से ग्राम–विकास का कार्य शुरु किया। गाँव के लोग पाठक और जैनरायन का द्वेष करने लगे इनसे भयभीत होकर पाठक ने अपने घर के सामने पुलिस के दो जवानों को खडा किया। पुलिस की हिफाजत में पाठक डेढ़–दो महिने तक था। गाँव के लड़के खुले आम यही गीत गाते,

> पाठक टुनइयाँ, पाठक टुनइयाँ
> पुलिस तोहर नानी; दारोगा तोर सइयाँ ; पाठक टुनइयाँ....।[25]

इस गीत से ही स्पष्ट होता है कि जमीदारों की पुलिस के साथ गहरी रिश्तेदारी थी। और इसी के गल पर जमींदार, गरीब किसानों, मजदूरों का मनचाहा शोषण करते है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' (1954) में मेरीगंज में आये हुए डॉक्टर प्रशांत के गारे में फारबिसगंज के नवतुरीया नेता छोटन बाबू ने लिखा था कि डाक्टर प्रशांत कम्युनिस्ट पार्टी का है। केवल इतनी शिकाय पर दारोगा डॉक्टर को गिरफ्तार कर लेते। संथालों को भड़काने के जुल्म में डॉक्टर जेल में जाता है "हर सप्ताह कोई–न–कोई ऑफीसर आकर उसे घण्टों परेशान करता है, तरह–तरह के प्रश्न पूछता है। ... चलित्तर कर्मकार के दल से डॉक्टर का कोई संबंध प्रमाणित करने के लिए पुलिस जी तोड परिश्रम कर रही है।"[26] इसी तरह मेरीगंज की संथाल जाति भी पुलिस शोषण का शिकार बन जाती है, यहां तक शिक्षित डॉ. प्रशांत भी पुलिस नीती से प्रभावित शापित है।

इससे यही स्पष्ट होता है कि जमींदारों और पुलिसों द्वारा सामान्य व्यक्ति का दोहरा शोषण हो रहा है। जमींदार अपने फायदे के लिए पुलिसों को हाथ में लेकर मनचाहा जूल्म किसानों पर ठो रहे है, झूठे आरोप लगार उनको जेल भेज देते है। आज गाँव में नई चेतना का उदय हो गया है। लोग पढ़–लिखकर शिक्षित बन गए है लेकिन फिर भी पुलिसों की भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति के कारण आज भी सामान्य जन पीड़ित है। आज भी उसकी न्याय मिलना मुश्किल लगता है। सामान्य लोग साधारणतः पुलिस की झंझट से दूर रहना पसंद करते है। पुलिस ग्राम व्यवस्था में रक्षक के रुप में कार्य करती है मगर रक्षक ही भक्षक बन जाए तो न्याय कौन देगा? यही प्रश्न है। पुलिस जमींदार राजनीतिक नेताओं का दात–काठी–रोटी जैसा संबंध रहा है। यहाँ स्पष्ट है अज्ञानी ग्रामवासियों के शोषण का एक रुप पुलिस शोषण लगता है।

क) <u>अंग्रेजों द्वारा शोषण की समस्या</u> :-

स्वातंत्र्यपूर्व काल में अंग्रेज अफसरोंद्वारा ग्रामीण लोगों का अमानवीय शोषण हो रहा था। अंग्रेजों ने भूमि पर लगान बढ़ाकर किसानों को फसल बेचने के लिए बाध्य किया इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था का ढ़ाँचा गिर गया। साथ ही कुटीर उद्योगों का न्हास हो गया। बढती हुई आबादी, कुटीर उद्योगां का न्हास, गिरता हुआ आर्थिक ढाँचा आदि के कारण किसान की आर्थिक दशा दिन-प्रतिदिन शोचनीय होने लगी, उनका शोषण होने लगा, उनपर अत्याचार होने लगे और इन सबका यथार्थ चित्रण हिन्दी उपन्यास में दिखाई देता है। आलोच्य उपन्न्यास में इसका अध्ययन इसप्रकार किया जाएगा -

नागार्जुन का 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) केवल मात्र ऐसा उपन्यास है, जिसमें अंग्रेजों की साम्राज्यवादी शोषण नीतियों व उनके द्वारा ढ़ाए जुल्मों का चित्रण हुआ है। समय की दृष्टि से भी यह उपन्यास ही उनका एकमात्र ऐसा उपन्यास है, जो एक लम्बे कालखंड को समेटता है और अंग्रेजी उपनिवेशवाद की शोषण की कथा कहता है।[27] बाबा बटेसरनाथ में नागार्जुनजी ने एक वटवृक्ष द्वारा रूपउली गाँव की सारी कहानी बताई गई है। अंग्रेजों के शोषण के बारे में बाबा बटेसरनाथ कहते है - "यहाँ से कोस-भर पूरब पर एक साहब आकर बस गया। क;च क्या ही शानदान कोठी बनवाई थी उसने। महाराज बहादुर से दो सौ एकड़ जमीन सौल साल के पट्टेपर नील की खेती के लिए उसको मिली थी .... शहर हो चाहे देहात, व्यापार-वाणिज्य का क्षेत्र हो चाहे किसानी-जमींदारी का, जल-कलक्टर हो या सेक्रेटारियट हर जगह गोरी चमडीवालों की तूती बोलती थी। कानून और दुकूमत उनके बूटों की कीलों के नीचे थे।"[28] रूपउली गाँव में अंग्रेज जमाने में अंग्रेजी पढ़ा-लिखा एक भी नहीं था। किसानों के ऊपर एक तरफ से जमींदारों का दबदबा था, तो दसूरी तरफ नील के कारखानेदार अंग्रेज जमे बैठे थे। सभी जगह अंग्रेजों ने अपना अधिका जमाया था। इस अंग्रेजी रियासत का व्यंग्य के साथ उल्लेख करके बाबा बटेसरनाथ कहते है, "वह महारानी विक्टोरिया का जमाना था जिले का कलक्टर गोरा था, पुलिस सुपरिटेंडेंट गोरा था। सब-डिविजनल अफसर गोरे थे। अदालत का बडा

हाकिम गोरा था। ऊपर बडा लाट और छोटा लाट, सब गोरे साहब।" इन गोरे साहब और जमींदारों के बीच देहाती जनता के दु:ख-दर्दी की आवाज नीचे-ही-नीचे दबती रहती थी। देहात के प्राकृतिक आपत्तियों में लोग मर रहे थे और अंग्रेजों ने देहात की ओर ध्यान देने की अपेक्षा रेल-पथ का निर्माण आरंभ किया। जैकिसुन के दादा अधिकभाई को जौंन साहब ने केवल इसलिए पीटा था कि वह सलाम करने चूक गया था। सलाम कहाँ से करते एक हाथ में तेल का बर्तन था, माथे पर अरहर का गठ्ठा आदि के कारण वे सलाम नहीं कर सके लेकिन दूसरे ही दिनवा उनके पीठ पर हंटरों की बौछार पड़ी। जिन्दगीभर ये निशान उनके पीठ पर बने रहे। इसी तरह अंग्रेजों ने अपने जमाने में किसानों का, मजदूरों का बहुत शोषण किया। कभी उनकी पिटाई की तो कभी बिना वजह रकम ऐंठ ली।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' (1954) में भी अंग्रेजोंद्वारा किए गए अत्याचारों का यथार्थ चित्रण दिखाई देता है। मेरीगंज गाँव के नामकरण का भी एक इतिहास है, जो अंग्रेजों के अत्याचार का परिचय देता है। मेरीगंज का पुराना नाम गाँव में किसी को भी मालूम नहीं अगर पता है तो भी नहीं बतायेंगे क्योंकि अंग्रेजों की दहशत लोगों के मन में घर बनाकर बैठ गई है। बहुत वर्ष पहले यहाँ नीलहासाहब मार्टिन आकर बसा था। तब उसने नवविवाहिता पत्नी मेरी के नाम पर इस गाँव का नाम मेरीगंज रख दिया था। एक बार किसी किसान के मुँह से इसका पुरान नाम निकल जाने पर मार्टिन ने उसे कोडों से पिटवाया था। तब से किसे ने वह नाम लेने का साहस नहीं किया। इसीप्रकार संथाल जाति भी शोषित है। संथाल जाति के लोग अपने हक के लिए संघर्ष करते हैं, तो उन्हें जोर-जुल्म और कानून दोनों तरह से कुचल दिया जाता है। सेशन केस में उन्हें आजीवन कारावास की सजा होती है। "न्याय और न्यायालय भी धनवानों की संपत्ति है। यद्यापि संथाल भी कोर्ट में अपना वकील खडा करते है लेकिन जमींदारों और सरकारी अफसरों के सामने टिक पा सकने की शक्ति अभी उनमें नहीं है। और इसलिए वे अपना अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश है।"[29]

इसीतरह अंग्रेजों द्वारा होने वाले शोषण में सामान्य जनता पूरी तरह पिस चूकी थी। अंग्रेजों ने लगान बढ़ाकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का ढाँचा बिगाड़ दिया था। कुटीर उद्योगों के बंद हो जाने से सामान्य लोगों की रोजी–रोटी छीन ली। साथ–ही–साथ अंग्रेजों के अत्याचार सहनेवाला यह वर्ग हमेशा के लिए नीचे दबता गया। किसानों की पिटाई करना, झूठे जुल्म में उन्हें जेल भेजना, जमींदारों से दोस्ती करके मनचाहे अत्याचार करना आदि कई प्रकार से अंग्रेज जन का शोषण कर रहे थे। अंग्रेजों द्वारा शोषण की समस्या उन उपन्यासों में है, जिनकी कथावस्तु स्वातंत्र्यपूर्व काल की पृष्ठभूमिपर आधारीत है।

ड) <u>धार्मिक व्यक्ति द्वारा शोषण</u> :–

धर्म और मानवी जीवन की अन्योन्याश्रित संबंध है। धर्म मानवी जीवन को नियंत्रित रखनेवाली एक संस्था है, तो मानवी जीवन धर्म को विकसित करने वाली व्यवस्था है। धर्म नैतिक–अनैतिक, सत्य–असत्य, पाप–पुण्य को स्पष्ट करनेवाली संकल्पना है। धर्म के कारण देवी–देवता के साथ–ही–साथ, ब्राह्मण पंडित, पुरोहित, ओझा आदि धार्मिक क्षेत्र में कार्य करने वाले धार्मिक व्यक्तियों को भी महत्वपूर्ण स्थान समाज में प्राप्त हुआ। प्राचीन काल से आज तक धर्म के नाम पर बलि देना, दक्षिणा पाना, दान देना, ग्रह शांति के नाम पर धन कमाना, आशिष के नाम पर कुकर्म करना, अनैतिकता को बढ़ावा देना, मठो–बिहारों को अपवित्र करना आदि कई रुपों में धार्मिक व्यक्ति समाज का शोषण कर रहे हैं। आलोच्य उपन्यास के आधार पर ग्रामीण जन–जीवन में धार्मिक व्यक्तियों द्वारा होनेवाला शोषण हम देखेंगे –

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948) में शुभंकरपूर के लोग बडे धार्मिक और श्रध्दालू है। पुनर्जन्म और परलोकवाद की भावना पर विश्वास रखते है। वे अपनी दुरावस्था का कारण अपने भाग्य को मानते हैं। उनकी धारणा है, छोटे–बड़े भगवान के घर से बनकर आते है। धर्म समृध्द लोगों की यश–कीर्ति और अस्तित्व को बनाए रखने के लिए समाज से हमेशा सहयोग देता रहा है, तो निर्बल, अक्षम और हीन किसान धर्म के कठोर अनुशासन में पिस–पिसकर सदा अन्याय और अत्याचार के अभिशाप को सहते हुए अपनी असहाय स्थिति में

पड़े रहेने के लिए विवश होते हैं। समाज के सबल, सक्षम और समृध्द लोगों पर धर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ता तथा वे जो करते हैं उसे धर्म सही मानता है। इसको नागार्जुन ने बडे मार्मिक शब्दों में स्पष्ट किया है – "समाज उन्हीं को दबाता है, जो गरीब होते है। शास्त्रकारों को बलि के लिए बकरे ही नजर आए। बाघ और भालू का बलिदान किसी को नहीं सूझा। बड़े–बड़े दाँत और खूनी पंजे पंडितों के सामने थे, इसलिए उधर से नजर फेरकर उन्होंने बेचार बकरों का फतवा दे डाला।"[30] धार्मिक पाखंड और अंधविश्वास पंडितजी में दिखाई देता है। संस्कृत पाठशाला के पंडितजी को राजा बहादुर से धन की प्राप्ति होती है, इसलिए नित्य ही पाठ के आदि मध्य या अंत में पंडितजी राजा बहादुर का गुणगान कर उनकी श्री–समृध्दि की अमरता की कामना करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। तो समाज के शोषक वर्ग के प्रतिनिधि दुर्गानंदनसिंह अपनी माँ के श्राध्दा के अवसर पर महामहोपाध्यापधारी सभी पंडितों को बुलाकर एवं उन्हें एक सौ रुपये की दक्षणा और आने–जाने का सेकंड क्लास का खर्च देकर ... "धर्म दिवाकर" की उपाधि प्राप्त करते है। जयदेव मिश्र के लडकों के विवाह के संबंध में जब गाँव में धर्म के नाम पर विरोध होता है, तो वे भोला पंडित को एक जोड़ा, महीन धोती और चाँदी के सौ रुपये देकर सारा मामला ठिक कर देते है। जयनाथ का ताराबाब पर पूरा विश्वास और श्रध्दा है इसीकारण वह ताराबाबा का प्रसाद समझकर हररोज भाँग पीता है। ताराबाबा के कहने पर गर्भ गिराने का यंत्र तैयार करता है। ताराबाबा के बारे में जो गाँव में किवदन्तियाँ प्रसिध्द हुई है उसे सारा गाँव सच मानता है। शुभंकरपूर के नजदीक परसौनी गाँव मे कटोरा चलानेवाले जुगल कामति को सारे गाँव के बड़े लोग तो ड़रते ही है लेकिन बच्चों में ड़र पैदा करनेवाले भी वह है। इसीतरह धार्मिक व्यक्ति सामान्य जनता को अपने पँजे में अटकाकर उन्हें फँसा रहे थे उनका शोषण कर रहे थे।

नागार्जुन की दूसरी रचना 'बलचनमा' (1952) में बलचनमा की मालकिन सुखिया पर भूत सवार होने पर दामो ठाकुर को बुलाया जाता है। दामो ठाकुर झाड–फूंक, पूजा–पाठ, टोना–टापर सब कुछ जानते है। सुखिया पर भूत सवार होने पर झाड–फूंक द्वारा वे घर की सारी किवाड़े बंद करके केवल सुखिया को अंदर लेकर उसका भूत उतार देते। बलचनमा कहता

है – भूत या प्रेम अक्सर बाँझ औरतों को ही पकड़ता है। स्पष्ट है सुखिया की दमित अतृप्त वासना जब उद्दीप्त होती तो उनकी तृप्ति के लिए ही यह ढोंग रचा जाता। इसतरह भूत–प्रेतों को शान्त करने के बहाने ओझे व्यभिचार में लीन होते है। नारी का शोषण करते है।

नागार्जुन ने 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में रूपउली गाँव में ब्रह्मबाबा की स्थापना करना, इच्छापूर्ति के लिए मनौतियाँ मनाना, देवी–देवता के सामने बलि देने के लिए लोगों को उत्साहित करना, ओझा द्वारा भूत–पिशाच्च निकालने के लिए दक्षिणा लेना, कंकाली माई के लिए बकरा और शराब की माँग करना आदि कई रुपों में अज्ञानी ग्रामवासियों का शोषण हो रहा है। देवता के लिए शराब की माँग करके धार्मिक व्यक्ति अपनी विकृति ही प्रकट करते है। इस पर भी उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' (1954) में तो धार्मिक व्यक्तियों द्वारा होनेवाला शोषण तथा भ्रष्ट धार्मिकता के दर्शन होते है। इसमें महंथ सेवादास, रामदास, लरसिंघदास, बूढे जोतिखी, नागाबाबा आदि सभी चरित्र का धार्मिक पाखंड के अच्छे उदाहरण है। मठ का महंथ सेवादास लक्ष्मी को मठ पर लाता है, जब वह अबोध नादान थी, एक ही कपड़ा पहनती थी। कहां वह बच्ची और कहाँ पचास बरस का बुढा गिध्द। रोज रात में लक्ष्मी रोती थी – ऐसी रोती कि जिसे सुनकर पत्थर भी पिघल जाए। सेवादास की भाँति रामदास भी व्यभिचारी है। "धर्मभ्रष्ट हो गया है। बगुलाभगत है। ब्रह्मचारी नहीं, व्यभिचारी है।"[31] यही लोगों की प्रतिक्रिया होती है। पूरे गाँव को भंडारा देना भी सेवादास के धार्मिक पाखंड का ही प्रतीक है। महंथ सेवादास की मृत्यु के बाद रामदास की लक्ष्मी को भोगने की इच्छा तीव्र होती है लेकिन लक्ष्मी उसे सफल नहीं होने देती। रामदास की इस प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति देकर लेखक ने मठों मन्दिरों में प्रतिष्ठित महंतो–पुजारियों में व्याप्त व्यभिचारी प्रवृत्ति की पोल खोल रख दी है। मुजफ्फरपुर जिले का लरसिंघदास मेरीगंज की महंथी पाने के लिए छटपटाता है। वह सेवादास का शिष्य होने के नाते सेवादास के बाद खुद महंथ बनने का प्रयास करता है। महंथी पाने

के लिए वह कुछ भी करने को तैयार होता है। पहले वह नौटंकी कंपनी में शामिल हुआ था। वहाँ भी वह कहारिन की बेटी रधिया को भगाकर ले जाता है। नौटंकी कंपनी में रधिया इन्हीं लोगों की हो जात है तब लरसिंघदास को पिटकर वहाँ से भागना पड़ता है। बाद में वह नेपाली गाँजे की स्मगलिंग करने लगा। महंथ साहब ने शरीर का त्याग किया तब वह जेल में था। मेरीगंज मठ की विशाल संपत्ति देखकर महंथी पाकर वह वहाँ का मालिक बनना चाहता था, साथ–ही–साथ लक्ष्मी को भी पाना चाहता था। लेकिन सोशलिस्ट कालीचरन के आगे वह कुछ नहीं कर पाता और महंथी रामदास को मिलती है। आचारज गुरु नागाबाबा भी लरसिंघदास को महंथी घोषित करते है तब कालीचरन लड़ाई पर उतारु होता है तब नागबाबा का गाँजे का नशा उतर जाता है और वे भागते नजर आते हैं। इसके बारे में देवेश ठाकुर लिखते है – "इस संपूर्ण योजना के माध्यम से लेखक ने धार्मिक विश्वासों के खोखलेपन और धर्म तथा आस्था के उस पाखंड पर करारा व्यंग्य किया हैं जा तर्क और साहस के सामने अधिक समय तक खड़ा नहीं रह सकता।"[32] मेरीगंज के धर्मिक पाखंड में और एक पत्र आता है ज्योतिषीजी का, जो सिर्फ अपना उल्लू सीधा करना और ग्रामीणों को भय दिखाने का कार्य करते है। चेतना और जागृति की किसी वस्तु को ज्योतिषीजी फूटी आँख नहीं देख पाती। गाँव में अस्पताल खुलने पर ज्योतिषी इसे अशुभ लक्षण मानते है। उन्हें शका है कि अब कुओं में दवा डालकर हैजा फैलाया जाएगा। फिर भी सारे लोग उनपर विश्वास करते है। तहसीलदार की बेटी कमला की बीमारी में वही झाड–फूंक का इलाज करते हैं। हीरु का बेटा बुखार का बीमारी में चला जाता है तब वे उसे अमावस्या की रात को डाइन को मारने के लिए कहते है और इसको सच मानकर हीरु गणेश की नानी को मार डालता है। गणेश बेसहारा हो जाता है। इसीतरह ज्योतिषी हर काम को बिगाड़ने में माहिर थे। लोगों को गलत दिशा दिखाकर उन्हें अंधविश्वासी बनाने का काम ज्योतिषीजी करते है।

इससे यही कहा जा सकता है कि ग्रामीण जन अशिक्षित, अज्ञानी होने के कारण कोई भी उन्हें ठगा सकता है। एक तरह यह उनका होनेवाला शोषण ही है। लेकिन ग्रामीण जन

भोले–भाले होने के कारण इसको समझ नहीं पाते ओर बीमारी में अपना दु:ख दूर करने के लिए हमेशा ऐसे धार्मिक व्यक्ति का सहारा लेते है। यही धार्मिक व्यक्ति धर्म के नामपर अनेक प्रकार की विसंगतियों और पाखंडों को बढ़ावा देकर अधर्म को फैलाते है। अशिक्षित जनता ऐसे धार्मिक व्यक्तियों के पीछे छिपे हुए असली रुप को देख नहीं पाती और आँखें बंद करके उनपर विश्वास कर लेती है। आज परिस्थिती बदल गई है। नई शिक्षा, नए विचार विज्ञान की सहायता से लोगों में जन–जागृति का प्रयास किया जा रहा है। आज भी कुंडली, भविष्य, ग्रह–नक्षत्र आदि पर लोग विश्वास करते है। इसी विश्वास का धार्मिक लोग आज भी फायदा ले रहे है। लोगों को ठगाने का काम कर रहे हैं। अत: धर्म और धार्मिक व्यक्ति अपने फायदे के लिए अपनी दृष्टि से धर्म का अर्थ बता रहे है। इसीकारण वह शोषण का एक आयाम बना है।

निष्कर्ष :– इससे यही कहा जा सकता है कि ग्रामीण जन–जीवन में अज्ञान, अशिक्षा की मात्रा अधिक होने के कारण उनका हर प्रकार से शोषण हो रहा है। जमींदार, महाजन, ब्राह्मण, पुरोहित, महंथ, ओझा द्वारा होनेवाला शोषण अब धीरे–धीरे कम होता जा रहा है। स्वातंत्र्यपूर्व काल की पृष्ठभूमि पर आधारीत उपन्यासों में अंग्रेजो द्वारा होनेवाला शोषण अब नहीं रहा है। कम सूद पर कर्ज उपलब्ध करा देकर सरकार उनका सूदखोरों के माध्यम से होने वाला शोषण रोक रही है। कानूनी सुधार तथा शिक्षा विषयक सरकार की उदारनीति के कारण ग्रामीण जन–जीवन में चेतना प्रवृत्ति उभर रही है। पुलिस अज्ञानी और भोले–भाले ग्रामीण लोगों का शोषण कर रही है। पुलिस का राजनीतिक नेताओं से, जमींदारों के साथ संबंध होने के कारण सामान्य किसानों, मजदूरों का शोषण हो रहा है। साथ–ही–साथ गाँव के लोग अंधश्रध्दा और धार्मिक होने के कारण पंडित, ओझा, ठाकुर द्वारा उनका शोषण हो रहा है। मगर आज अंधश्रध्दा निर्मुलन समिति, सेवाभावी संस्था आदि के कारण इस शोषण की मात्रा कम हो गई है। जमींदारी उन्मूलन, वेठबिगारी प्रथा का निर्मुलन, सूद खोरी का कानूनन प्रतिबंध आदि के कारण शोषण कम हो रहा है। ग्रामीणों का होनवाला यह विविध आयामी

शोषण उनके जीवन के शोषण की कथा ही है। आज सरकार की उदारनीति, सेवाभावी व्यक्तियों और संस्थाओं का कार्य विकास मंडलों की स्थापना, सरकारी अफसरों का वहाँ पहुँचना आदि के कारण शोषण की मात्रा कम होने की संभावना है।

ड) नारी शोषण की समस्या :–

नारी समाज व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है। नारी के विविध रुपों की व्याख्या की है मगर आज उसका 'दुर्गा' की अपेक्षा 'अबला' की रुप अधिक मात्रा में उभर उठा है। युगों–युगों से पीड़ित, अत्याचार–अनाचार की शिकार एवं वासना तृप्ति का साधन बनकर जीवन व्यतीत करनेवाली नारी बेबस, लाचार एवं अपमानीत जिंदगी जी रही है। पाश्चात्य सभ्यता का आक्रमण, आर्थिकता का अभाव, अशिक्षा, धर्म का बुरा प्रभाव, रूढ़ि–परंपरा आदि कई कारणों से ग्रामीण नारी का जीवन समस्याओं से घिरा हुआ है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक समस्याओं में अटकी ग्रामीण नारी का विविध रुपों में शोषण होता है। ग्रामीण नारी या भारतीय नारी का विविध रुपों में होनेवाले शोषण को इस प्रकार देखा जा सकता है – .

नारी

नारी का स्वरुप	ग्रामीण नारी की समस्याएँ		शोषण के विविध रुप
1) शोषित नारी	विधवा जीवन	विवाह विषयक	जमींदारों द्वारा
2) बलात्कारित नारी	1) अवैध मातृत्व	1) बाल–विवाह	पुलिस द्वारा
3) भोग्या नारी	2) अशिक्षा	2) बहु–विवाह	सरकारी अफसरोंद्वार
4) रखैल नारी	3) आत्महत्या	3) अनमेल विवाह	परिवार द्वारा
5) वेश्या नारी	4) अवैध संबंध	4) परित्यकत्या	धार्मिक व्यक्तिद्वारा
6) जागृत नारी	5) अवैध मातृत्व	5) दहेज	रूढ़ि प्रथा द्वारा
6) परितक्त्या नारी			समाज द्वारा

नारी के अन्य रुप	ग्रामीण नारी का पारिवारिक संबंध
1) पढ़ी लिखी नारी	1) पति–पत्नी संबंध
2) आदर्श पत्नी	2) टुटते – बिगड़ते पति–पत्नि संबंध
3) माँ	3) माता–संतान संबंध
4) बहन	4) भाई–बहन संबंध
	5) सास–बहू संबंध
	6) भाई–बहन संबंध
	7) भाभी–ननंद संबंध

उपर्युक्त तालिका द्वारा भारतीय नारी के विविध रुप स्पष्ट होते है तथा होनेवाला शोषण, उससे व्यथीत नारी जीवन भी दिखाई देता है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी जीवन का सूक्ष्म रुप से चित्रण किया है। आलोच्य उपन्यासों के आधार पर ग्रामीण जन–जीवन में नारी का रुप, शोषण के विविध रुप, स्वरुप, उसकी समस्याएँ, पारिवारीक संबंध आदि के बारे में हम सोचेंगे –

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948) में विधवा नारी की दयनीय स्थिति के बारे में विचार किया है। रतिनाथ की चाची में सामाजिक विषमता और स्वार्थपरता ने गौरी की स्थिति को बहुत दयनीय बना दिया है। मैथिल कुलीन सामंती एवं रुढ़िवादी ब्राह्मण वृत्ति पर जीविका

चलानेवाला जयनाथ गौरी अर्थात अपनी भाभी को अपनी कामुकता का शिकार बना लेता है। वह गर्भ धारण कर लेती है ऐसी स्थिति में उसे अकेला छोडकर वह गाँव से भाग जाता है। शुभंकरपूर का समाज दम्मो फूफी और रामपुरवाली चाची गौरी को समझ नहीं पाती और उसके जीवन को दूभर बना देते है। गौरी अपनी माँ के पास जाकर गर्भपात करा देती है। उसकी माँ का रुप समाज में एक बाघिन के तरह था इसीकारण गौरी को अपनी मानसिक पीड़ा का एहसास नहीं होता लेकिन शुभंकरपूर वापस आने पर सारा शुभंकरपूर उसे नोंचने के लिए दौड़ता है। खुद उसका पुत्र उमानाथ उसके साथ दुर्व्यवहार करता है। गौरी के पति की बरसी पर समाज ब्राह्मण को खाने के लिए न जाने देकर गौरी के प्रति अपने क्रूरतम व्यवहार का परिचय देता है। इसप्रकार सामाजिक तिरस्कार, अपमान एवं घुटन के कारण गौरी का जीवन, एक दु:खद गाथा बनकर रह गया है। इस विधवा जीवन शोषण की शिकार गौरी ही नहीं तो अन्य कई स्त्रियाँ है। उनमें परसौनी गाँव की रहनेवाली सुशिला, जो बाल-विधवा है। जयनाथ उसके प्रति भी आकर्षित होता है। सुशिला काशी के विधवा आश्रम में रहती थी। जो सज्जन, धनी उस विधवा आश्रम को चलाते है उसकेबारे में सुशीला बताती है – वह धनी सज्जन विधवाओं के प्रति इतना करुणामय है कि तीन-तीन विवाहिताएँ और पाँच-पाँच रखेलियाँ रहते हुए भी चूडियों से सूनी कलाई की ओर ललचाई निगाह से देखा करता है।[33] रतिनाथ की चाची का भोला पंडित एक ऐसा धूर्त चरित्र है, जो पचास-पचास रुपयों के लिए किशोरी बालिकाओं के जीवन से, अनमेल विवाह कराकर खिलवाड करता है। पचीसों लड़कियाँ इनके नाम पर दिन-रात आँसू बहाया करती थी। उनकी जिंदगी नष्टप्राय हो गई थी। भोला पंडित जैसे बिचौलिया मिथिला-जनपद के समाज में व्याप्त अशिक्षा और कुलश्रेष्ठता के आग्रह का लाभ उठाकर हजारो नारियों का जीवन बर्बाद करते है। ऐसे लोगों के कारण नारी जीवन अधिक पीड़ित और शोषित बना। इसीतरह इस उपन्यास में विधवा नारी की स्थिति कितनी अपमानजनक होती है तथा उसे समाज में कौनसी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है आदि सबका यह यथार्थ चित्रण है। यहाँ स्पष्ट है रतिनाथ की चाची विधवा नारी की करुण कहानी ही है।

नागार्जुन ने 'बलचनमा' (1952) में भी नारी की घुटनभरी जिंदगी का वर्णन किया गया है। बलचनमा जब चौदह बरस का था तब उसके पिता को जमींदारों ने मार डाला। घर में उसकी माँ, दादी और छोटी बहन रेबनी थी। इतनी कम आयु में बलचनमा और रेबनी पिता के छत्र से वंचित हो गए। माँ विधवा हो गई। परिवार का सारा बोझ बलचनमा पर पड़ा। इतना सब होने के बावजूद भी बलचनमा की माँ एक स्वाभिमानी नारी बनकर रह गई। वह गरीबी और वैवध्य की दोहरी मार की परवाह न कर परिश्रम और स्वाभिमान से जीवन यापन करने लगी। वह अपनी लड़की रेबनी की इज्जत जमींदारों के हाथ में बेचने को तैयार नहीं। स्वयं रेबनी भी माँ के समान स्वाभिमानी है। वह जमींदारों के जुल्मों को सहन करती है लेकिन इज्जत पर आँच नहीं आने देती। बलचनमा के पिता को मारकर भी जमींदार चुप नहीं बैठे तो उसकी बहन रेबनी की इज्जत पर हाथ डालने की भी कोशिश करते है। इससे यही स्पष्ट होता है कि जमींदार जैसे बड़े लोग नारी को केवल भोग्य नारी के रुप में देखते है। निम्न जाति के औरतों की इज्जत पर हाथ डालना वे अपनी बहादुरी समझते है। रेबनी हाथ न आने पर उसका सारा गुस्सा जमींदार बलचनमा की माँ पर उतार देते है और उसकी पिटाई करते हैं फिर भी वह टस से मस नहीं होती और अपनी इज्जत की रक्षा करती है। यहाँ स्पष्ट है पारिवारिक विपत्तियों में भी अस्मत की रखा करनेवाली एक संघर्षप्रिय, चेतीत नारी बलचनमा की माँ है, तो जमींदार नारी को खिलवाड़ मानकर दुर्व्यवहार करनेवाले नरपशु है। 'विधवा' नारी के लिए शाप है मगर नारी को वह जीवन भी जीना पड़ता है। उपन्यासकारों ने इस पर कलम चलाई है।

नारी समस्या में बाल–विधवा एक समस्या है। बलचनमा के मालिक की बड़ी बेटी जयमंगला का बचपन में विवाह हुआ लेकिन बाल विधवा का जीवन उसे प्राप्त हुआ। बाल–विधवा बनी जयमंगला अंत में एक दर्जी के साथ भाग जाती है। इसप्रकार बाल विधवा नारी शोषण का एक करुणामय रुप है। बाल–विधवा की दर्दभरी यह कहानी है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी के 'गंगा मैया' (1953) में भी विधवा नारी की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। गोपी की भाभी शादी के कुछ ही दिनों में विधवा बन जाती है। वह अपने को

सास–ससूर तथा बहन की सेवा में लगा देती है। पूजा–अर्चा, रामायण पाठ आदि में अपना मन लगाने की कोशिश करती है फिर भी वह अंदर से एक घुटनभरी जिंदगी जीने के लिए मजबूर बन जाती है। अपने धर्म का पालन करने की भी कोशिश करती है। वह एक क्षत्रिय थी इसी कारण दूसरी शादी भी नहीं कर सकती लेकिन गोपी की पत्नी की मृत्यु हो जाने पर गोपी दूसरी शादी कर सकता है। जाति के नियम, रूढ़ि–परंपरा केवल नारी के लिए ही है, इससे उसका मन चीड़ जाता है क्योंकि वह गोपी की तरफ आकर्षित हो जाती है। वह अपनी परंपराओं की बेड़ी को तोड़ना तो चाहती है लेकिन समाज से डरती है। गाँव में कई विधवाओं ने कुएँ में जान दी, तो कईयों ने भागकर दूसरी शादी की। गोपी की भाभी इसमें से कुछ भी नहीं कर सकती। गोपी जेल से छुटकर जब भाभी के साथ शदी करने का प्रयोजन बताता है तब सारा दोष केवल भाभी पर डालकर सास–ससूर उसे गालियाँ देते है, जिससे गोपी की भाभी आत्महत्या करने के लिए प्रवृत्त होती है, वह कुँए की तरफ जाती है। विधवा नारी के लिए सारी जिंदगी अकेली काटना बड़ा मुश्किल होता है। एक तरफ रुढ़ि–परंपराओं की जंजीर तो दूसरी तरफ समाज, घरवालों का डर रहता है। "ना घर की ना घाट की" इसप्रकार विधवा की स्थितिं होती है। परिवार में या समाज में एक विधवा नारी के लिए कोई स्थान नाहीं केवल एक घुटनभरी जिंदगी जीने के लिए वह मजबूर हो जाती है। परिवार और समाज दोनों तरफ से उसका दोहरा शोषण होता है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' (1954) में मठ में रहनेवाली लक्ष्मी का चरित्र अधिक विस्तार से प्रस्तुत हुआ है। 'मैला आँचल' के स्त्री पात्रों में लक्ष्मी ही सबसे अधिक शोषित, पीड़ित नारी रही है। लक्ष्मी का पिता मेरीगंज मठ के आधीन एक मठ का सेवक था। इसके लिए वसुमतिया के महंथ और मेरीगंज के महंथ सेवादास के बीच काफी लड़ाई झगडा हुआ। अन्ततः लक्ष्मी कानूनन सेवादास की ही हुई। सेवादास ने वकील को समझा–बुझाकर अदालत को यह आश्वासन दिया कि उसे पढ़ा–लिखाकर बड़ी होने पर उसकी शादी करवा देगा। लेकिन सेवादास ने यह अपना आश्वासन पूरा नहीं किया। लक्ष्मी बड़ी होते ही वह उसे भोगने

का प्रयास भी करता है लेकिन वह सफल नहीं होता। सेवादास के बाद महंथ रामदास भी लक्ष्मी पर आँखे लगाये बैठता है, इसीतरह नागाबाबा, लहसिघदास सभी की आँखे लक्ष्मी पर थी। ये लोग लक्ष्मी को केवल एक भोग्या नारी के रुप में देखते है। इसीतरह 'मैला आंचल' में ऐसे अनेक नारी पात्र है जो किसी न किसी रुप में समाज से शोषित है। मंगला भी समाज से शोषित है। उसके बारे में कई अफवाहें फैली हुई है। उसे भी किसी ने अच्छा नहीं समझा। तहसीलदार की बेटी कमला की शादी के बारे में कई अंधविश्वास फैले है इसीकारण कोई भी उससे शादी करने के लिए तैयार नहीं। नागरी प्रदेश में रहनेवाली ममता प्रशांत से प्यार करती है। लेकिन अंत में उसे भी प्रशांत की शादी की खबर सुनने को मिलती है। वह अपने आपको संभालकर प्रशांत की खुशी में अपनी खुशी मान लेती है। शहर की ही फुलमातिया नारी शोषण का और एक रुप है जिसपर सामूहिक रुप में बलात्कार होता है। गणेश की नानी को तोसारे मेरीगंज में डायन माना जाता है इसी अंधविश्वास के कारण उसकी हत्या की जाती है। बहुविवाह पध्दति द्वारा भी नारी का शोषण होता है। मेरीगंज में जोतखीजी की चार–चार शादीयाँ हो चुकी है। इसी तरह किसी न किसी रुप में मेरीगंज की नारी शोषित हैं। मेरीगंज में निम्न समझनेवाली संथाल जाति की औरतों पर भी जुल्म किया जाता है।

समाज में परिवार का मुख्यतः नारी एक महत्वपूर्ण घटक है। इसके बिना घर की व्याख्या पूरी नहीं हो पाती लेकिन उसे ही आज समाज ने अपने रुढ़ि–परंपराओं के बंधन में जकडा दिया है। अशिक्षा के कारण नारी बहुत शोषित थी। आज समाज की स्थिति बदल रही है। नारी ने घर के बाहर कदम रख दिया है, अपने हक के लिए वह जागृत हो रही है, अपने पर हुए अन्याय का वह मुकाबला कर रही है। पुरुषों के साथ–साथ हर क्षेत्र में उसने अपनी पहचान बना ली है। फिर भी नारी पुरुषों के आगे नहीं जा सकती क्योंकि हमारी संस्कृति ही पुरुष प्रधान संस्कृति है। घर के साथ–साथ नौकरी की जिम्मेदारी संभालना, सास–ससूर, जेठानी–ननद आदि कई रिश्तों में अटकी हुई नारी जिम्मेदारियों को छोड़कर शहर नहीं आ सकती। अतः किसी–न–किसी रुप में कहीं–न–कहीं नारी आज भी शोषित है।

धनाभाव के कारण जमींदार शोषण करते है। भोलेपन, भावुकता का लाभ धार्मिक व्यक्ति उठाते है। अबलापन का सहारा लेकर परिवारवाले उसे पीड़ा देते है। रुढ़ि, परंपरा से जुड़ी मानसिकता के कारण विधवा का पुनर्विवाह नहीं होता। नारी को भोग्या मानकर बिकाऊ वस्तु मानना नारी शोषण का कारण है। अतः बाल विवाह को संभाव्य करके विधवा विवाह को समाज स्वीकृति दे, नारी शिक्षा को अनिवार्य माना जाए, नारी को पुरुषों के समान सम्मान दिया जाए तो यह शोषण कम होगा नहीं तो हाय! अबला तेरी यह कहानी, आँचल में दूध और आँखों में पानी यह कथन सच ही रहेगा। भैरवप्रसाद गुप्तजी ने गंगा मैया में विधवा विवाह रचाकर एक प्रगतिवादी विचारधारा को बल प्रदान किया है, विधवा का पुर्नविवाह ही विधवा शोषण समस्या पर सही उपाय है।

<u>जातीय भेदाभेद की समस्या</u> :-

भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म के साथ जाति एवं गोत्र का महत्व रहा है। ग्रामीण लोग अपनी जाति व्यवस्था को सुरक्षित रखना चाहते हैं। परिणामतः जातीय भेदाभेद की समस्या का निर्माण हुआ है। आज देश में जातीयता एवं सांप्रदायिकता की दग्धता फैल रही है। ग्रामीण जीवन में भी इसके दर्शन होते है। डॉ.देवेश ठाकुर के मतानुसार – "एक ओर राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित भारतीय समाज एक स्वर में अंग्रेजी शासन के विरुध्द उठ खडा हुआ था और दूसरी ओर स्वयं उसमें नगर ही नहीं ग्राम्य और आंचलिक स्तर पर भी जातिवाद का विष बीज विकास पा रहा था जिससे व्यक्ति –व्यक्ति के बीच मतभेद की खाई गहरी हो रही थी और व्यक्ति समाज जातिगत आधारपर अलग–अलग समूहों में विभाजित और विछिन्न होकर परस्पर द्वेष, ईर्ष्या और शत्रुता के भाव को बढाता हुआ राष्ट्रीय शक्ति, एकता और उदात्त मानवीयता के आदर्शों को धूमिल कर रहा था।"[34] यहाँ यह कथन यथार्थ लगता है। हिन्दी के स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में भी इसके दर्शन होते है। आलोच्य उपन्यासों में जातीय भेदाभेद की समस्या पर कहाँ तक प्रकाश डाला है इसपर हम यहाँ सोचेंगे –

नागार्जुन में 'रतिनाथ की चाची' (1948) का कुल्ली राउत निम्न जाति का है। वह चुपके से कुछ मंत्र सीख लेता है। जब इस बात का पता रतिनाथ के पिता जयनाथ को चलता है, तो वह फुफकार उठता है, "साले की चमड़ी उघेड लूँगा। शूद्र है तो शूद्र की भाँति रहे।"[35] इससे यही स्पष्ट होता है कि निम्न जाति के लोगों को धर्मतंत्र के पठन–पाठन का कोई अधिकार नहीं। एक दिन रतिनाथ तरकुलवा जाते हुए मार्ग में तालाब के किनारे बैठकर जल्दी जल्दी संध्या करता है। इस पर कुल्ली राउत ने रतिनाथ से मुस्कराकर कहा – "लो बाप के गुण सीख न गये।" रतिनाथ को इस बात की सत्यता नजर आती है और वह विचार करता है उच्च जाति के ब्राह्मण और निम्न जाति के कुल्ली राउत की विषम सामाजिक स्थिति का कारण वस्तुतः धर्म और जाति के आरोपित विधि–विधान ही है। रतिनाथ आगे सोचता है – अगर यह भी ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ होता, तो निश्चय ही इसके बदन पर फटे–पुराने कपड़े न होते। हमारी जूठन खाकर, हमारी पहिरन पहनकर इसके बच्चे न पलते। उन्हें कभी स्कूल और पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिलता। क्या मर्द, क्या औरत इन लोगों का जीवन बड़ी जातिवालों की मेहरबानी पर निर्भर है।[36] तरकुलवा गाँव की रचना भी जाति के अनुसार है। ब्राह्मण, राजपूत, बनिया, ग्वाला आदि गाँव के एक ओर थे, मुसलमान दूसरी ओर, तो निम्न जातिवाले उसके बाद। इससे स्पष्ट है ग्राम व्यवस्था भी जातीयता से पूरी तरह प्रभावित है ऐसा लगता है।

नागार्जुन ने 'बलचनमा' (1952) में भी जातीयता पर विचार किया है। बलचनमा खुद एक अहिर–मजदूर तथा ग्वाला है और उसी जाति के अनुसार उसे मालिक के यहाँ भैंसे चराने का, खिलाने–पिलाने का काम मिलता है। यहाँ मैथिल ब्राह्मण छोटी जातिवालों का छुआ हुआ भोजन नहीं खाते। फूलबाबू के दादा, परदादा भी छोटी जातवालों को लूटते थे। नागार्जुन इसका वर्णन करते हुए लिखते है – "छोटी जात वाले जन बनिहारों के पास होता ही क्या?... मगर भैया इन कसाइयों के चलते बेचारों के पास यह सब भी नहीं रह पाता। नीलाम करा लेते है। कुर्क हो जाती है। ... बडी जातवालों की माया तब भी अपार थी और अब भी। बात–बात में

अपनी गोरी वही लाल करते है।"[37] बलचनमा के गाँव के वैद्य, आदमी कितना भी बीमार क्यों न हो पर छोटी जातिवालों के यहाँ जाकर कभी भी नाड़ी नहीं देखते दूर से ही दवा देते है। बलचनमा यहाँ निम्न जाति का समझा जाता है और मनचाहे उसपर जुल्म ढाए जाते है। उसका सारा परिवार अपनी जाति के कारण ही पीसता रहता है। यहाँ स्पष्ट है कि जातीयता के कारण ग्राम व्यवस्था में दरारें पडी तो दूसरी ओर व्यक्ति व्यक्ति में भेदभाव बना रहा। यहाँ तक वैद्य अपना धर्म भूल गये, निम्न जातिवालों को बिना छूकर दूरी से देवा देनेवाले वैद्य किस तरह मरीजों पर इलाज करेंगे? यही सवाल है। इसप्रकार जातीयता की समस्या कितनी भयावह है यह स्पष्ट होता है।

नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में रूपउली गांव की जातीय व्यवस्था की समस्या स्पष्ट की है। रूपउली गाँव में अनेक जाति के लोग रहते है। वहाँ जाति–जाति में फर्क किया जाता था, ब्राह्मण, राजपूत, भूईहार आदि कुछ जातियों के जवानों को ही फौज में जगह मिलती थी। बडी जातिवाले जमींदार निम्न जाति को बहुत हल्का समझते थे, अपने फायदे के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते थे। पाठक और जैनरायन, जैकिसुन और उसके साथियों को जेल में भेजने के लिए एक गूँगे चमार की हत्या करते है। इसीतरह जमींदार ऊँची जातवाले निम्न जाति पर जुल्म करते रहे और निम्न जातिवाले अपने जुल्म को सहते रहे। यहाँ स्पष्ट है निम्न जाति के लोगों को न नौकरी में स्थान था न समाज व्यवस्था में पनाह। चारों ओर से आतंकित जिंदगी जी रहे थे। ऐसा यहाँ लक्षित होता है।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' (1954) में भी जातीय भेदाभेद से निर्मित जातीय वैमनस्य के दर्शन होते है। मेरीगंज गाँव के लोग जातीय वर्गों में बँटे हुए है। यहाँ राजपूत टोली कायस्थ टोली, ब्राह्मण टोली, यादव टोली आदि में बँटे हुए लोग अपनें जातीय भेदाभेद के कारण हर समय अपनी जाति की श्रेष्ठता दिखाने का प्रयास करते है। राजपूतों और कायस्थों मेु पुश्तैनी मन–मुटाव और झगड़े होते रहते है। ब्राह्मण इन दोनों के बीच दुश्मनी को बढ़ाने और तीसरी शक्ति के रुप में प्रयोग करते है। क्षत्रियता की मान्यता पर यादवों और राजपुतों में

वैमनस्य है। जोतखी काका, खेलावन यादव, ठाकुर रामकिरपाल सिंह, विश्वनाथ प्रसाद मालिक मेरीगंज के जातीय नेता है। कॉंग्रेसी कार्यकर्ता बलदेव भी जातीय भेदाभेद के पुजारी है। वह सोचता है – "वह अपने गॉंव में रहेगा। अपने समाज में, अपनी जाति में रहेगा। जाति बहुत बडी चीज है। ... जाति की बात ऐसी है कि अब सभी बड़े–बडे लीडर अपनी अपनी जाति की पार्टी में है।"[38] हरगौरी और बलदेव की नोंक–छौंक जातिगत विद्वेष में जाती है। गॉंव में अस्पताल बनने की खुशी में महंथ साहेब सामूहिक भोज रखते है। तब सामूहिक भोज को ब्राह्मण नकारते है क्योंकि उनका अलग प्रबंध नहीं किया गया। मेरीगंज के पंचों और और पंचायत में भी जातीय भेदाभेद के दर्शन होते हैं। यादव और राजपूत एक–दूसरे को नीचा दिखाने में कार्यरत है, तो यादव टोली के लोग कायस्थों और राजपूतों पर विश्वास नहीं करते। मेरीगंज में सबसे शोषित जाति है – संथाल लोगों की। संथाल जाति को गॉंव में कोई भी स्थान नहीं है। इतना ही नहीं तो डॉ.प्रशांत के जाति की जिक्र लगी रहती है क्योंकि उसकी बेटी की शादी प्रशांत से होनेवाली थी। जाति के बिना शादी कैसे हो सकती है? इसीतरह मेरीगंज के लोग पहले आदमी की जाति को देखते है बाद में आदमी को। यहाँ आदमी की पहचान जाति पर होती है। यहाँ स्पष्ट है कि लोगों पर जाति का गहरा प्रभाव है। साथ–ही–साथ जाति के आधारपर होनेवाली सांप्रदायिकता भी दिखाई देती है।

ग्राम जन–जीवन में जाति का प्रभाव लक्षित होता है। हर जाति का व्यक्ति अपनी जाति को श्रेष्ठ मानने की कोशिश करता है, इससे जातीय संघर्ष का निर्माण होता है। सांप्रदायिकता निर्माण के मूल में जातिवाद ही है। इसी जातिवाद के कारण व्यक्ति–व्यक्ति के बीच दरारें गहरी हो गई है। एकता, उदात्त मानवीयता पर प्रश्न चिहन है। आज कुछ हद तक परिस्थिति बदल गई है लेकिन इस जातीयता को कोई भी मिटा नहीं पाया है। जातीयता की बेड़ी में जकड़े हुए ये लोग आज भी पूरी तरह से बाहर नहीं आए है। इसीतरह अगर लोग जातीयता की बेड़ी में अटके रहेंगे तो न व्यक्ति का विकास होगा और न ही देश का। जातीयता की समस्या देश की एकता, अखंडता में दीवार बनकर रही है। इसे जब मिटाया जायेगा तब मानव मानव को पहचानेगा।

<u>भ्रष्टाचार की समस्या</u> :–

आजादी के बाद जिन समस्याओं का प्रभाव रहा है, उसमें जातीयता, सांप्रदायिकता के साथ भ्रष्टाचार भी है। जिसमें आज देश घिरा हुआ है। आज सबसे बड़ी समस्या भ्रष्टाचार की दिखाई देती है। शिक्षित–अशिक्षित, नेता, सरकारी अफसर, पुलिस, शिक्षा व्यवस्था इससे प्रभावित है। आज ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है, जिसमें भ्रष्टाचार न होता हो। सभी प्रकार के लोग इस भ्रष्टाचार की समस्या से ग्रस्त हुए है। धन कमाना, बिना मुसीबतों से काम में सफलता पाना, अवैध धंदों की रक्षा करना आदि कई कारणों ने भ्रष्टाचार को जन्म दिया है।

ग्रामीण लोगों के अज्ञान–अंधविश्वास और भोलेपन का फायदा उठाकर उन्हें लूटने का काम जमींदार, महाजन, ठाकुर, सरकारी अफसर करते है। इन लोगों की भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति के कारण ग्रामीण अंचलों में भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है। इस भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति के दर्शन अनेक स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में लक्षित होते है। भ्रष्टाचार का स्वरुप और उसके कारण ग्रामीण जन का होनेवाला शोषण की समस्या पर आलोच्य उपन्यासों के आधार पर यहाँ देखेंगे –

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948) में शिक्षा व्यवस्था में होनेवाला भ्रष्टाचार दिखाई देता है। रतिनाथ पर पाठशाला के पंडितजी बड़े प्रसन्न रहते हैं क्योंकि रतिनाथ पंडितजी के सारे काम वह करता है। पंडितजी केवल पढ़ाते नहीं थे बल्कि उसके साथ पुरोहित का भी काम करते। "बारह रुपया महीना डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से भी लेते थे, और पाँच रुपया राजा बहादुर से भी।"[39] यह कथन इसी बात का सबूत ही है। स्वतंत्रता आंदोलन में कई नेताओं ने देश के नाम पर धन कमाया। उनके साथ–साथ उनके चेले भी गाँव के लोगों को ठगाकर अपनी जेब भरते रहे। चाची ने चर्खा चलाने का काम लिया। हर महीने पचीस–तीस रुपये मिलते। लेकिन उसमें भी भ्रष्टाचार का रुप नजर आता है। चाची बेहद बारीक सूत कातती। चर्खी संघ वाले चाची के सूत को कभी एक सौद स नंबर करार करते तो कभी साठ। "चाची के समझ में यह नहीं आ रहा था कि गाँधीजी के चेले इस प्रकार की बेईमानी क्यों करते है?"[40] इसी तरह देश को चलानेवाले, अपने को नेता कहनेवाले भ्रष्टाचार का सहारा लेकर धन कमाते है।

गांधीजी का नाम लेकर भ्रष्टाचार करनेवालें की खाल उतारने का काम यहाँ किया है।

भ्रष्टाचार की समस्या नागार्जुन के ही 'बलचनमा' (1952) में भी दिखाई देती है। जमींदार अपने रुपयों के बल पर हमेशा गरीब लोगों पर जूल्म करते है तथा हर फैसला उनकी तरफ से होता है। फूल बाबू के परदादा बनैली राज में तहसीलदार थे। तब "अदालत उनकी, हाकिम उनका, थाना–दरोगा उनका, पुलिस उनकी गरीबों के लिए सिवाय लात–जूता के और है ही क्या?"[41] यह रुप जमींदारों का है लेकिन नेता लोग तो इससे आगे निकले। फूलबाबू जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में अपने आपको झोंक दिया था वही आगे चलकर लोगों का रुपया हड़प कर लेते है। रिलीफ फंड के लिए जो रकम गाँव को मिली थी; वह बराबर में नही बाँटी तो जैसा मुँह, जिसकी जैसी आवाज उसको उतनी ही रकम मिली। इस बारे में मोसंमात कुन्ती बलचनमा से कहती है – "ये लोग जुलुम करते हैं बेटा, देते है दो और कागज पर चढ़ाते है दस। इमान–धरम इनका सब डूब गया, तेल जरे तेली का और कटे मशालची का। छोटे मालिक क सरबेटा आया था अफसर बनके खैरात बाटने। हो न हो, हजार पाँच सौ उसने जरुन मार लिय होगा।"[42] इसीतरह गाँव के भोले–भाले किसानों को सभी लूटते रहें चाहें वह जमींदार हो, पुलिस हो, सरकारी अफसर हो या नेता वे सभी इस भ्रष्टाचारी दुनिया में अटके हुए है और ग्रामवासियों को फँसाते रहे इसलिए आज यह कहा जाता है कि आजादी के लिए जनआंदोलन करके अंग्रेजों को हटाया, अब जनसंघर्ष करके भ्रष्टाचार को मिटाना है। इससे स्पष्ट है आज का मानव भ्रष्टाचारी बना हैं, इसपर भी उपन्यासाकारों ने सोचा है।

भैरवप्रसाद गुप्त जी ने 'गंगा मैया' (1953) में भी पुलिसों की भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति चित्रित की है। गोपी की भाभी घर से लापता होने पर गोपी पर यह इल्जाम लगाया जाता है कि गोपी ने ही भाभी को कुएँ में ढकेल दिया। गोपी के बिना बयान ही दारोगा अपनी रिपोर्ट तैयार करता है। दारोगा नए–नए दाँव रचकर गोपी को भय दिखाता है लेकिन कुछ भी नहीं होता। भ्रष्टाचार के इस स्वरुप पर प्रकाश डालते हुए उपन्यासकार लिखता है – "इधर गोपीचन्द की थैली का मुँह खुला, उधर कानून का मुँह बन्द हो गया। कहानी खतम हो गयी।"[43] इससे स्पष्ट है कि पुलिस अवैध रुप में धन प्राप्ति करती है। मटरू को जेल में भेजने के लिए पुलिस

ही जमीदारों की मदद करती, झूठे जुर्म में महरु तीन साल के लिए जेल जाता है। सरकारी अफसर, जमींदार, पुलिस, दारोगा इनकी आपस में मिली-भगत होती है यह यहाँ स्पष्ट होता है।

नागार्जुन ने 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में पाठक और जैनरायन एक चमार की हत्या करते है लेकिन पुलिस से उनकी दोस्ती होने के कारण वे जैकिसुन पर जुल्म थोंपते है। जैकिसुन को जेल की सजा होती है। तब दयानाथ उनको छुडाने के लिए थना अदालत-कचहरी से लेकर कँाग्रेस के एम.एल.ए. बाबू उग्रमोहन दास और बाबू कुलानन्द दास एम.पी.को मिलता है। परंतु आश्वासनों के अलावा उन्हें कुछ भी नहीं मिलता। तब दयानाथ सोचता है – "आजादी ! फि ! आजादी मिली है, हमारे उग्रमोहन बाबू को कुलानन्दनदास को ... कँाग्रेस की टिकट पर जो भी चुने गए हैं उन्हें मिली है आजादी। मिनिस्टारों को तो और ऊँचे दरजे की आजादी मिली है। सेक्रेटरियट के बडे साहबों को भी आजादी का फायदा पहुँचा है।"[44] इस नई भ्रष्ट कँाग्रेस समाज – व्यवस्था पर नागार्जुन ने यथार्थ शब्दों में व्यंग्य किया है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने 'मैला आँचल' (1954) में समरितदास और तहसीलदार साहब दोनों ही रैयतो से छोटी-छोटी चीजें मँागते है। मँागते समय केवल सुमरितदास आगे जाता है लेकिन कद्दू, खीर, बैंगन, करेला, कबूतर, हल्दी, मिर्ची, साग, सरसों का तेल आदि सब चीजें तहसीलदार के घर पहुँच जाती है तो कुछ सुमरितदास के लिए। गँाव वालों को अपना काम करने से पहले इन सब चीजों को देना पडता है। यह हुई बडे लोगों की, तहसीलदार की बात। लेकिन धर्म के नाम पर भी लोग भ्रष्ट होते है। लरसिंधदास अपने को मेरीगंज के मठ का महंथ करने के लिए काशी के नागाबाबा को बहुत-सा गँाज देता है और उपर से आधिकारीजी को एक सौ रुपया देने के लिए तैयार है। कँाग्रेसी लीडर बलदेव अपने को नेता बनाकर गँाव में घूमते है लेकिन वही गँाव में बँाटे जानेवाले कपडे, चीनी और किरासन तेल में गोल-माल करते हैं, भ्रष्टाचार करते है। मेरीगंज गँाव के लोग और संथालों में झगडा होता है

तब दारोगा खेलावनजी को भी उसमें शामिल करता है, तब खेलावन दारोगा को पाँच हजार रुपया देता है तब ही वह जेल जाने से बचता है। चालित्तर कर्मकार को पार्टी से निकाल दिया जाता है क्योंकि वह सिमेंट के पैसों का हिसाब नहीं रखता। इतना ही नहीं तो पार्टी का बन्दूक पेस्तौल भी उसने नहीं दिया। संथालों और जमींदारों के बीच जमीन को लेकर हुए संघर्ष के मुकदमें में संथालों का आजन्म कारावास की सजा सुना दी जाती है। यद्यपि संथाल अपना वकील भी खड़ा करते लेकिन जमींदार और सरकारी अफसरों के आगे वह टिक नहीं पाते। इसतरह भ्रष्टाचार का रुप हर जगह नजर आता है। इससे यहाँ स्पष्ट होता है कि भ्रष्टाचार का कितना भयावह रुप है। जिससे नेता, अफसर, पुलिस, धार्मिक व्यक्ति, न्यायव्यवस्था सभी शामिल है तथा रिश्वत के रुप में सिर्फ रुपये ही नहीं बल्कि कद्दू खीरा, बैंगन, हल्दी, साग जैसी चीजें भी लेनेवाले तहसीलदार का चित्रण करके उस पर रेणु ने व्यंग्य कसा है। यहाँ यह भी स्पष्ट है भ्रष्टाचार से मिलनेवाली चीजं अफसर के घर अपने–आप ही पहुँचती है। इसका अर्थ है भ्रष्टाचार को बढावा देने का कार्य हम सभी करते है।

भ्रष्टाचार केवल नगर की समस्या बनकर नहीं रही, तो उसकी जड़े, गाँवों के भीतर प्रवेश कर गई है। भ्रष्ट जमींदार, नेता लोग, पुलिस, सरकारी अफसर आदि सभी में भ्रष्टाचार का रुप दिखाई देता है। इस भ्रष्टाचार ने सारे देश को एक नई चुनौती खड़ी कर दी है। हर आदमी पैसे, रुपये के पीछे दौड़ रहा है फिर वह चाहे किसी भी रुप में मिले लेकिन मिलना जरुरी है। आज भी इसी भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति ने देश की नींव को हिला दिया है। लेकिन इसमें पीसनेवाला केवल सामान्य, मध्य और निम्न वर्ग है। इनकी फरियाद सुननेवाला कोई भी नहीं है। एक आदमी दूसरे आदमी को लूटता है, उस पर अन्याय करता है, कभी–कभी उसी में उसका अंत होता है लेकिन इस प्रवृत्ति को मिटानेवाला कोई भी नहीं है। भ्रष्ट समाज व्यवस्था को उखाड़नेवाला कोई एक नहीं हो सकता, सभी ने मिलकर तय किया तथा अपनी ईमानदारी से काम किया तो यह मिट सकता है। यहाँ स्पष्ट है भ्रष्टाचार का उद्गम सरकारी दफ्तरों, अमीरों से होता है, सामान्य व्यक्ति से नहीं। जब तक इसे समाप्त नहीं

किया जाता तब तक देश का विकास संभव नहीं है। इसलिए इस भयावह समस्या का हल करना सभी देशवासियों का राष्ट्रीय कर्तव्य बना है।

अशिक्षा की समस्या :-

भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रारंभ 19 वी शताब्दी में मैकाले की शिक्षा नीति से हुआ। अंग्रेजों की इसमें कूट नीति शामिल थी। अंग्रेज शिक्षा के माध्यम से भारत में एक ऐसा शिक्षित वर्ग तैयार करना चाहते थे, जो उनकी शासन व्यवस्था की नींव को सुदृढ़ रख सके। उनकी यह भी नीति थी कि वैज्ञानिक तथा टेक्नीकल शिक्षा का अधिक प्रचार न हो, ताकि औद्योगिक क्षेत्र में भारत स्वतंत्र रुप से विकास न कर सके और ब्रिटेन के लिए इसका मुनाफा होता रहे। भारत की शासन व्यवस्था सँभालने के लिए कुछ ही व्यक्ति उच्च शिक्षा ले सके। इसलिए अंग्रेजों ने शिक्षा प्रणाली को महंगा बना दिया। विश्वविद्यालय की शिक्षा पर रोक लगा दी। परिणामतः जन-साधारण लोग शिक्षा से वंचित रह गए। जिन लोगों ने उच्च शिक्षा ग्रहण की उन्होंने सिर्फ अपनी रोजी-रोटी के लिए इसका उपयोग किया। अंतः शिक्षित वर्ग अपने को शासक समझने लगा और अशिक्षितों पर शासन करने की भावना से वह कार्य करता रहा। शिक्षा का उद्देश्य केवल उपाधि लेना और नौकरी प्राप्त करना रह गया। इसीकारण शिक्षा के प्रति उपेक्षा का भाव, महंगी शिक्षा तथा उच्चतम शिक्षा पर रोक के कारण समाज का एक ही वर्ग शिक्षा प्राप्त कर सका। सर्वसाधारण जनता शिक्षा से वंचित रही।

शिक्षा से साक्षर बना व्यक्ति अपना विशिष्ट दृष्टिकोण स्वीकार करता हुआ जिंदगी जीता है। शिक्षा प्रसार में सरकार की भूमिका अहम् रहती है। यदि सरकार शिक्षा प्रसार में भेदभावपूर्ण नीति अपनाती है तो शिक्षा विकास का नहीं बल्कि शोषण का आयाम बनती है। ऐसी हालत अंग्रेजों के काल में, स्वातंत्र्यपूर्व काल में दिखाई देती है। इसी काल में अज्ञान, अशिक्षा एक बडी समस्या थी, जिसका यथार्थ रुपों में वर्णन साहित्य में हुआ है। अज्ञान के कारण ग्रामवासियों का शोषण होता रहा है। धार्मिक व्यक्ति धर्म के नामपर, जमींदार धन के बलपर, शासक सत्ता के आधारपर ग्रामवासियों का शोषण करते रहे है। आज धीरे-धीरे

अनिवार्य शिक्षा नीति के फलस्वरुप ग्राम जीवन की स्थिति परिवर्तित हुई है। लेकिन काफी मात्रा में नहीं। हिन्दी उपन्यासकारों ने अपनी कृति में अज्ञानी ग्रामवासियों की हालत स्पष्ट की है। उस पर हम यहाँ सोचेंगे –

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948) में जयनाथ संस्कृत श्लोक पढ़ना या पठन करना केवल अपना अधिकार समझता है। कुल्ली राउत को संस्कृत के कई स्त्रोत याद है, उसे गायत्री भी आती है। जयनाथ को यह बात पता चलते ही वह फुफकार उठता है। इससे स्पष्ट होता है उच्च वर्ग का ही शिक्षा का अधिकार मानने की ग्रामवासियों की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

भारत में सबसे अधिक अशिक्षित लोग गाँव में पाए जाते हैं और उसमें भी अधिक तर नारियाँ ही शिक्षा से वंचित रहती है। इसके दुष्परिणाम भी नारियाँ आज तक सहती आई है। ग्राम में नारी को पढ़ाना लिखाना मना था। नागार्जुन के 'बलचनमा' (1952) में बलचनमा की बहन रेबनी पढ़ी–लिखी न होने के कारण अपनी बीमार माँ की खबर बलचनमा तक नहीं भेज सकती सिर्फ बड़े बाबूओं के लड़के पढ़े–लिखे थे वह तो उनके भी लिखवा नहीं पाती क्योंकि उन लड़कों की बुरी नजर रेबनी पर टिकी रहती। भला वह कैसे उनके पास जाती। रेबनी की अशिक्षा उसकी मजबूरी बन जाती है। यहाँ स्पष्ट है अशिक्षा के कारण नारियों का शोषण हो रहा है। नारी का शारीरिक, मानसिक, भावनिक स्तर पर शोषण होता है – रेबनी इसका उदाहरण है। नागार्जुन ने नारी शोषण का एक नया आयाम स्पष्ट किया है।

प्रगतिवादी उपन्यासकार भैरवप्रसाद गुप्त ने विधवा नारी के जीवन के साथ–ही–साथ अशिक्षित, अज्ञानी विधवा जीवन की समस्या पर 'गंगा मैया' में विचार किया है। गंगा मैया में गोपी की भाभी भी अशिक्षित है। गोपी की भाभी अपना विधवा जीवन किसी तरह व्यतीत करते हुए रामायण पाठ का सहारा लेती है। विधवा जीवन की दयनीय पीड़ा को सहते हुए अपनी मानसिक शांति के लिए हररोज सुबह जल्दी उठकर रामायण पाठ खोलती है लेकिन उसे पढ़ने

में बहुत तकलीफ होती है क्योंकि उसे शिक्षा नियमित रुप से नहीं दी गयी थी। बचपन में वह अपने भाई के साथ कुछ दिन पाठशाला गई थी लेकिन कुछ ही दिनों में उसका पाठशाला में जाना बंद हो गया। नारी को शिक्षा देना, गाँव में बुरा समझा जाता था इसीकारण वह न तो रामायण पाठ ठिक तरह से पढ़ सकती थी और न गोपी का खत पढ़ सकती या उसे खत लिख सकती। ग्रामीण जन–जीवन में लोगों की यही धारणा होती है कि लड़की पढ़–लिखकर क्या करेगी? अतः उसे घर के कामों में लगा दिया जाता है। इसीतरह वह हमेशा के लिए शिक्षा से वंचित होती है। यहाँ स्पष्ट है नारी शिक्षा के प्रति ग्रामवासी जागरुक नहीं है तथा अपनी पुरानी मानसिकता से जुडे है। शिक्षा अभाव से नारी का जीवन शोचनीय, चिंतनीय बना है। भाभी इसका अच्छा उदाहरण है। अल्पज्ञानी होने पर भी वह कोशिश करके रामायण पाठ पढ़ती है। यह एक आदर्श नारी का उदाहरण है। ऐसा लगता है। इसीतरह भारतीय नारी कार्य करेगी तो वह चेतित बनकर अपना भविष्य बनाने में सफल होगी ऐसा लगता है।

नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' में रूपउली गांव की अज्ञानी जनता की कथा व्यथा है। रूपउली गाँव पर जमींदारों का प्रभाव है। शिक्षा सुविधा का गाँव में अभाव रहा है। शिक्षा के लिए नगरों में जाना पड़ता था। परिणामतः जमींदार के बेटे शिक्षा प्राप्त करने में सफल रहते है। सामान्य जनता गरीबी, अर्थाभाव के कारण अज्ञानी रही है। उनके अज्ञान का लाभ उठाने की जमींदारों की प्रवृत्ति रही है। जमींदारों द्वारा शोषण, धार्मिक व्यक्ति द्वारा शोषण, सरकारी अफसरोंद्वारा होनेवाला शोषण अज्ञान का ही परिणाम है। नागार्जुन ने इस पर भी प्रकाश डाला है। रूपउली गाँव का किसान शत्रुमर्दन राय जमींदारों का कर्ज चुका न सका और उस पर लगाया हुआ ब्याज दुगुना होनर के कारण मूल रकम तो वैसी ही रही। उसकी अशिक्षा और अज्ञानता के कारण मूल रकम और उसका व्याज वह जान न सका और जमींदरों की बर्बरता का शिकार हो गया। शत्रुमर्दन राय निम्न जाति का था। गाँव में निम्न जाति को शिक्षा का अधिकार नहीं था। रूपउली गाँव में केवल जमींदारों के लड़के ही शिक्षित थे। जैनरायन का बेटा लोको इंजीनियरिंग की ऊँची डिग्री पाकर जमालपुर के रेल्वे वर्कशॉप में चार सौ की तनख्वाह कले रह था। टुनाई पाठक का लड़का एम.ए. और वकालत का इम्तिहान पास करके जज

ससूर की सिफारिस से इन्कमटैक्स का जिला अधिकारी हो गया था। इसके अतिरिक्त दो वकील, दो प्रोफेसर, एक डिप्टी मॅजिस्ट्रेट, एक फॅरेस्ट ऑफिसर आदि सब बड़े बाबूओं के ही लड़के थे। ऊँची और महँगी शिक्षा पा लेने के बाद इन सभी की आँखों पर मोटी–मोटी ऐनकें पड़ गई थी, मिजाज चढ गया था।[45] यहाँ स्पष्ट है रूपउली गाँव में शिक्षा व्यवस्था उच्च वर्ग के लिए ही थी। ग्रामवासी सामान्य जनता अज्ञानी ही रही है।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' (1954) में मेरीगंज गांव की अशिक्षा पर विचार किया है। सिर्फ उच्च वर्ग के लिए शिक्षा, शिक्षा में भ्रष्टाचार अवैघ रास्ते आदि पर रेणुने सोचा है। मेरीगंज में अज्ञानी लोगों की आबादी जादा है, इसका कारण असुविधा का होना ही है। मेरीगंज गाँव में कुल 10 लोग पढ़े–लिखे है अर्थात 90% लोग अज्ञानी है। इसमें भी तहसीलदार की बेटी कमला ने ऊँची शिक्षा प्राप्त की है। उसकी बोलचाल, रहन–सहन पर ऊँची शिक्षा का प्रभाव साफ दिखाई देता है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था में कुछ लोग भ्रष्टाचार से अपना स्वार्थ साथ लेना चाहते है। जैसे, हरगौरिया के पिता हरगौरिया को पास कराने के लिए मास्टर के पास जाका घूस देना चाहते है लेकिन मास्टरजी उन्हें भगाते है। इससे स्पष्ट होता है पढ़ा–लिखा व्यक्ति अपने आचार, विचार में परिवर्तन करता है। कमला इसका प्रतीक है तो धनवान लोग धनशक्ति के बल पर शिक्षा में भ्रष्टाचार को बढावा दे रहे है। हरगौरिया इसका उदाहरण है। भ्रष्टाचार की नई समस्या को चित्रित करके उपन्यासकार ने कई चुनौती को स्पष्ट किया है।

शिक्षा के अभाव से अज्ञान, अंधविश्वास, रूढ़ि–परंपरा का प्रभाव बढ़ जाता है। किसानों के शोषण का मुख्य कारण भी यह अशिक्षा ही है, फिर वह चाहे भैरवप्रसाद गुप्तजी के 'गंगा मैया' का मटरू हो या फिर नागार्जुन के 'बलचनमा' का बलचनमा हो। दोनों भी अशिक्षा के कारण जमींदारों से मुकाबला नहीं कर पाते। यहाँ स्पष्ट है अशिक्षा सामाजिक समस्या के मूल में है। उसीतरह आर्थिक समस्या की नींव रही है। उपन्यासकार ने उसपर भी प्रकाश डाला है।

आज शिक्षा व्यवस्था में बदलाव आया है। भारत सरकार ने इसे अनिवार्य माना है। प्रौढ शिक्षा, नारी शिक्षा, छात्रावास, छात्रवृत्ति, आश्रम स्कूल पर बल दिया जा रहा है। प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य और मुफ्त होने के कारण साक्षरता में सुधार हुआ है। 1951 में भारत में साक्षरता का प्रमाण 13.6 प्रतिशत, 1961 में 24 प्रतिशत, 1971 में 29.45 प्रतिशत रहा है। जिसमें कुल साक्षरता का 61.3 प्रतिशत शहरी क्षेत्र में और 33.8 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में दिखाई देता है। ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं की संख्या कम है लेकिन लोग शिक्षा का महत्व समझ गए है। इसीकारण भैरवप्रसादजी के "गंगा मैया" का मटरू अपने लड़कों को पहले पाठशाला भेजता है। यह खुद अज्ञानी, अनपढ़ होने के कारण जमींदारों के कागजाद पढ नहीं सकता। इसका एहसास होते ही वह अपने लड़के के प्रति सतर्क हो जाता है, उसे स्कूल भेजता है। इसीतरह धीरे-धीरे ग्रामवासियों में शिक्षा के प्रति रुचित बढ जाएगी, उसका महत्व समझ में आ जायेगा और एक दिन पूरा भारत साक्षर हो जाएगा, ऐसा विश्वास है।

यौन-संबंधों की समस्या :-

भारतीय जन जातीय समाज व्यवस्था में यौन संबंधों की स्थापन के लिए विवाह संस्था के अतिरिक्त अन्य मार्गो से भी यौन संबंध स्थापित किए जाते है। कुछ जन जातियों में स्वच्छन्दतापूर्वक यौन संबंध स्थापित करने की स्वतंत्रता रहत है तो कुछ जातियों में कठोर नियत भी लक्षित होते है। "सेक्स मानव की आदिम भूख है। सामजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आदमी ने सेक्स की भूख को दाम्पत्य के भीतर नियंत्रित किया ताकि सामाजिक संबंधों एवं मूल्यों की मूल धारणा को क्षति न पहुँचे।"[46] मनुष्य में "काम" यह एक आवश्यक प्रवृत्ति है। साहित्य में भी इसी प्रवृत्ति को उभारा है। डॉ.रामदरश मिश्र के मतानुसार – "अधिकांश महानगरी कहानियाँ और उपन्यास व्यक्ति की अहेतुक कामलिला को यौन-संबंधों का यथार्थ रुप मान लेते है और एक आधुनिक समस्या बनाकर पेश करना चाहते है।"[47] मानव मन की इस प्रवृत्ति का चित्रण साहित्य में हो रहा है। चाहे नागरी हो या ग्रामीण हो यौन संबंधों की समस्या सर्वत्र व्याप्त है। हिन्दी के स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में ग्रामीण जन-जीवन में स्थित यौन संबंधों पर प्रकाश डाला है। विवाह बाह्या, विवाह पूर्व, विवाहोत्तर विजातीय, अनैतिक आदि

रुप में ये यौन संबंध आलोच्य उपन्यासों में दिखाई देते है।

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948) में गौरी अर्थात रतिनाथ की चाची इसी यौन संबंध की शिकार हुई है। गौरी अपने देवर जयनाथ की वासना की शिकार बनीं और अवैध मातृत्व का बोझ ढ़ोने लगी। इसीकारण सारा गाँव उसपर ऊँगलीयाँ उठाता रहा। शुभंकरपुर में रहना उसके लिए बहुत मुश्किल बन जाता है। जयनाथ के संबंध केवल गौरी के साथ ही नहीं रहे तो सुशीला, सुमित्रा आदि नारियों में फँसा हुआ वह दिखाई देता है। शुभंकरपूर में इसके अलावा विवाह की सौराठ सभा, बिकौआ प्रथा आदि के कारण ऐसे संबंधों का निर्माण हुआ है। बाल–विवाह, अनमेल–विवाह आदि के कारण विधवा नारियों की संख्या बढ़ जाती है। विधवा नारियों पर कृपा करनेवाले, विधवा आश्रम की निर्मिती कराकर उनके साथ ऐसे अवैध यौन संबंध रखते है। यहाँ रखेलियाँ होकर भी उनकी दृष्टि विधवा की ओर जाती ही है। इसीतरह ग्रामीण जन–जीवन में अवैध यौन संबंधों का स्थान रहता है। यहाँ स्पष्ट है नागार्जुन ने अवैध संबंध, अवैध मातृत्व, विधवा, विधवाश्रम आदि के संदर्भ में गहराई से सोचा है। नारी जीवन के शोषण का यह एक आयाम लगता है।

नागार्जुन के 'बलचनमा' (1952) में बलचपमा की छोटी मालकिन की नौकरानी सुखिया पर भूत सवार होते ही ओझा दामो ठाकुर को बुलाया जाता है। सुखिया अपनी काम वासना की तृप्ति के लिए यह सब नाटक करती है। दामो ठाकुर भूत निकालने के बहाने घर की सारी किवाड़ें बंद करके भूत निकालता है। इसप्रकार ओझा लोग ग्रामीण लोगों के अंधविश्वास का फायदा उठाकर अवैध यौन संबंध स्थापित करते है। यहाँ कामवासना तृप्ति के लिए कई तरीके अपनाकर अवैध संबंध, यौन तृप्ति करनेवाली नारियाँ समाज में है । जो योगी, साधु, भगत की वासना की शिकार बनती है। उसकी तरफ भी नागार्जुन ने संकेत किया है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी के 'गंगा मैया' (1953) में नारी समस्या के अंतर्गत विधवा नारी की स्थिति और उसके परिणाम आदि के बारे में केवल उल्लेख किया गया है। विधवा नारी को फिर

से शादी करने का अधिकार न होने के कारण गोपी के गाँव की कितनी ही लडकियाँ यौन–संबंध को छिपाने के लिए भाग गई। नहीं तो कुएँ में जान दे दी। यहाँ स्पष्ट है अवैध संबंध से पीड़ित युवतियाँ खुद खुशी करके जीवन समाप्त भी करती है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' (1954) में अनैतिक संबंधों की स्थिति यत्र–तत्र नजर आती है। सभी वर्गों में अनैतिक संबंधों की स्थिति है। यहाँ तक कि इस उपन्यास का नायक प्रशांत भी इससे अछूता नहीं रहता। तहसीलदार की बेटी कमला उनके प्रति आकर्षित होती है। यह आकर्षण परस्पर आकर्षण में बदलता है और विवाह से पहले की कमला डॉ. प्रशांत का गर्भ धारण करती है। अंत में बच्चों को वह स्वीकार करता है। इसके संदर्भ में डॉ. देवेश ठाकुर का कथन है – "इस स्वीकारोक्ति में स्त्री–पुरुष का यह संबंध विशेष रुप से गरिमायुक्त हो जाता है। अन्यथा अन्य स्त्री–पुरुष संबंधों में अशिक्षा, कुंठा, गलत संस्कारों और रुग्ण परिवेश की छाया ही अधिक परिलक्षित होती है।"[48] मठ की दासिन लख्मी पर सेवादास, रामदास, नागाबाबा की निगाहें रहती है तथा वे उसे भोगना चाहते है। लेकिन लक्ष्मी यह मौका नहीं देती। काँग्रेसी कार्यकर्ता बलदेव के प्रति अपने संबंध अनुभव करती है। फुलिया खलासी से विवाह रचाती है, और 'पैटमान' तथा सहदेव मिसिद से अनैतिक संबंध रखती है। यही स्थिति रामपियरिया ओर रधिया की है। चरखा संघ की मंगला देवी के बारे में अनेक किस्से प्रचलित है। "सेक्स की प्रवृत्ति स्त्री–पुरुष के परस्पर आकर्षण की यह भावना बहुत नैसर्गिक है, यह ठीक है। लेकिन जब यह सस्ती भूमिका पर व्यवहत्त होती है तब उसकी उदात्तता समाप्त हो जाती है और जीवन गर्हित हो जाता है।"[49] यह कथन यहाँ यथार्थ लगता है।

ग्रामीण जन–जीवन में शिक्षा का अभाव, अज्ञान, परस्पर वैमनस्य, नारी का दुय्यम स्थान आदि के कारण लोग अवैध यौन–संबंधों के आधीन हो जाते है। इसी में रुढ़ि, परंपरा, धर्म का पालन, नारी का बाल–विवाह, अनमेल विवाह के कारण विधवापन आदि कई कारणों से ग्रामीण जन–जीवन में अवैध संबंधों की निर्मिती होती है। आज नारी की स्थिति बदल गई है।

वह शिक्षा ग्रहण करने लगी है। गाँव में भी शिक्षा का प्रसार हो गया है लेकिन फिर भी यह यौन–संबंधों की समस्या खत्म नहीं हुई है। स्त्री–पुरुष का पारस्परिक आकर्षण, विज्ञान युग का प्रभाव, पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण आदि गई कारणों से इस समस्या ने आज भयावह रुप धारण कर लिया है। आज सारे विश्व में फैली 'एड्स' की बीमारी इसका ही परिणाम है। इस 'एड्स' की बीमारी के मूल में केवल यही अवैध यौन–संबंध है। अगर इसको रोका नहीं गया तो धीरे–धीरे सारे विश्व में यह बीमारी फैल जाएगी ऐसा लगता है।

अन्य विविध समस्याएँ :–

ग्रामीण लोगों का जीवन बहुविध अभावों से भरा हुआ है। उनमें कई समस्याएँ स्थित है, जो उनके सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, मानसिक, शारीरिक धरातल पर शोषण का आयाम बनी है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण जन–जीवन की समस्याएँ इस अध्याय के अंतर्गत कई महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार किया है। यहाँ इस जीवन से जुडी हुई अन्य कई विविध गौण समस्याओं पर हम सोचेंगे, जिनका जिक्र कम मात्रा में आलोच्य उपन्यासों में किया गया है।

1) नशा–पान की समस्या :– बहुतांश ग्रामीण जन आज भी नशा पान के चंगुल में फँसे हुए देखने को मिलते है। गाँजा, चरस, शराब, तमाकू आदि कई प्रकार की आदतें ग्रामीण जनों में दिखाई देती है। कभी–कभी अंधविश्वास के कारण यह व्यसनाधिनता और बढ़ती है, यह एक लत बन जाती है। नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948) में जयनाथ भगवान का प्रसाद समझकर हररोज भाँग पीता है और आखिर में इसकी आदत ही पड़ जाती है। तो 'बलचनमा' (1952) में भी ठाकुर लोगों को दारु तथा भंग पीने का शौक है। एक बार नहीं तो दिन में दो–दो बार। मध्यवर्ग में तमाकू और ताडी का लोगों को शौक है। 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में जैकिसुन के साथियों को बीड़ी पीने की आदत है। और रेणु के 'मैला आँचल' (1954) में इस समस्या पर गहराई के साथ प्रकाश डाला है। धर्म के नामपर मठ चलानेवाली व्यक्ति केवल व्यभिचारी ही नहीं तो व्यसन में पूर्ण रुप से डूबी हुई दिखाई देती है। मठ के महंथ

सेवादास, रामदास, नागाबाबा आदि सबको गाँजा पीने का बडा शौक है। इनकी मृत्यु के समय अंतिम इच्छा गाँजा पीने की ही रहती है। लोगों को यहाँ ताड़ी पीने का भी शौक है। आदि के माध्यम से यहाँ नशा की समस्या पर प्रकाशा डाला गया है। इससे स्पष्ट है अशिक्षा, अज्ञान के कारण ग्रामवासी नशापान करते है। अपनी पीड़ा भुलने के लिए नशा करनेवाले लोग दिखाई देते है। अवैध धंधों के कारण इसे बढावा मिल रहा है ऐसा यहाँ स्पष्ट होता है।

2) <u>दारिद्रयता तथा भूख की समस्या</u> :– "गरीबी शहरों में भी है, लेकिन गांवों में उसकी मुद्रा मारक है। शहर में राहत के दूसरे रास्ते हैं, लेकिन गांव साधनहीन है। गाँव में गरीबी रेखा के नीचे रहनेवालों का प्रतिशत भी कहीं अधिक होता है। इसलिए कहा जाता है कि गांव और गरीबी में प्रेमय–प्रमाण संबंध है।"[50] औद्योगिकरण का अभाव, अर्थाभाव, अशिक्षा के कारण ग्रामीण जीवन में दरिद्रता के दर्शन होते है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में अनेक जगह इसका चित्रण हुआ है। नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948) का कुल्ली राउत का जीवन जमींदारों की जूठन खाकर व्यतीत होता है। तथा रतिनाथ द्वारा किताबों की चोरी कराना आदि से गरीबी के दर्शन होते है। 'बलचनमा' (1952) का खुद बलचनमा जमींदारों के यहाँ काम कराकर उनका जूठन खाकर तथा उन्होंने दिया हुआ पहनकर, ओढ़कर अपना जीवन चलाता है। तो 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) का शत्रुमर्दन राय केवल अपने कर्ज के कारण अपनी जान गंवा बैठता है। तो रेणु के 'मैला आंचल' (1954) की संथाल जाति गरीबी का प्रतीक मानी जाएगी। इसी तरह ग्रामीण जन–जीवन में गरीबी तथा दरिद्रता की स्थिति बडी भयावह नजर आती है।

3) <u>प्राकृतिक आपदा की समस्या</u> :– गरीबी की स्थिति ही बड़ी कष्टप्रद होती है। जब गरीबी के साथ अकाल और बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाएँ जुड़ जाती है तो उसका रुप भी भयावह हो जाता है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में भी इसपर प्रकाश डाला गया है। 'रतिनाथ की चाची' में मलेरिया के प्रकोप से कई आदमी मर जाते है। डॉक्टर, वैद्य का कोई प्रभाव नहीं होता। चाची की मृत्यु भी उसे में हो जाती है। 'बाबा बटेसरनाथ' में अकाल का बड़ा ही धार्मिक मार्मिक चित्र प्रस्तुत हुआ है। रूपउली गाँव अकाल के कारण भूख की पीड़ा से टूट रहा था।

मामूली हैसियत के लोग शकरकंद बनाम अल्हुआ की शरण ले चुके थे तो खेत मजदूर आम की सूखी गुठलियाँ चूर-चूर कर महुआ का आटा मिलाकर टिक्कड़ बनाते और भूख को शान्त करते थे। उसीतरह रूपउली गाँव पर बाढ़ का भी प्रकोप हुआ था, पूरा कृषक वर्ग तो निरंतर विपन्नता में पहुँच चुका था। भैरवप्रसाद गुप्तजी के 'गंगा मैया' का मटरू अपनी सारी जीविका गंगा मैया के सहारे चलाता है। गंगा मैया के किनारे खेती की उपज भी अच्छी है। लेकिन कभी-कभी यही गंगा बाढ़ का रुप धारण करती है तब कितने ही किसानों को अपनी झोपड़ियाँ हटानी पडती है, कभी तो सारी खेती नष्ट होती है। रेणु के 'मैला आंचल' में हैजे के प्रकोप में सारा गांव तबाह होता है लेकिन डॉ. प्रशांत के कारण मेरीगंज के केवल पाँच आदमी मरते है। इसीतरह प्राकृतिक आपत्तियों से सबसे अधिक हानि मध्य वर्ग या निम्न वर्ग के किसान, मजदूर आदि को पहुँचती है। एक ओर जमीदारों और साहुकारों के शिकंजे में जकड़ा सामान्य जन छटपटा रहा था तो दूसरी ओर इन दैवी प्रकोपों ने तो जैसे उसकी कमर तोड़ रख दी हो। अकाल और बाढ़ बीमारी जैसी आपत्तियों ने किसानों के आर्थिक संकट में वृध्दि की है। ये दैवी आपदायें जनशक्ति और धनशक्ति दोनों का ही नाश करती है।

ग्रामीण प्रदेश में इन प्रमुख समस्याओं के अतिरिक्त और भी कुछ समस्याएँ है जिनको गौण रुप में स्पष्ट किया गया है, जिसमें याता-यात की सुविधा का अभाव, डाकखाना, अस्पताल का अभाव, भौतिक सुविधाओं का अभाव, मनोरंजन का, मुद्रण व्यवस्था, बिजली, औद्योगिकीकरण, पीने का पानी, जलसिंचन, खेती का नया ज्ञान आदि सुविधाओं से वंचित ग्राम के दर्शन होते है।

अतः स्पष्ट है आज भी ग्राम जीवन कई समस्याओं से घिरा है। इनमें से कुछ समस्याएँ मानव निर्मित, कुछ प्राकृतिक, कुछ सामाजिक रही है। समस्या कौन सी भी हो सजगता, एकता के साथ उसे सुलझाया जाय तो हल होगी ऐसा लगता है।

निष्कर्ष :–

'स्वातंत्र्योत्त्तर हिन्दी उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण जीवन की समस्याएँ' इस अध्याय में मैंने अंधविश्वास की समस्या, शोषण की समस्या, नारी शोषण, जातीय भेदाभेद की समस्या, भ्रष्टाचार की समस्या, यौन संबंधों की समस्या, अशिक्षा की समस्या इन प्रमुख समस्याओं पर विस्तार के साथ सोचा है। इन समस्याओं के अतिरिक्त याता–यात के साधनों की कमी की समस्या, चिकित्सालयों एवं स्कूलों की कमी की समस्या, नशापान की समस्या, प्राकृतिक आपदा की समस्या, भूख की समस्या आदि समस्यायें गौण रुप में आलोच्च उपन्यासों में समाकलित की गई है।

आलोच्च उपन्यासों के आधार पर ग्रामीण जन–जीवन में स्थित अंधविश्वास की समस्या देखने को मिलती है। इसमें बीमारी को मिटाना, अच्छी फसल की पैदास के लिए बलि देना, शरीर गोंदना, बलि चढाना, बरखा की आराधना के लिए ग्यारह लाख शिवलिंग बनाना, मेंढक को कुचलाना, संकट से मुक्ति के लिए देवी–देवताओं से प्रार्थना करना, पाप–मुक्ति के लिए देवी–देवता से प्रार्थना करना तथा प्रायश्चित के लिए काशी (सिमरिया घाट) जाकर स्नान करना, मनौतियाँ मनाना, अतृप्त एवं असंतुष्ट मृत आत्मा का भूत–पिशाच्च–चुडैल बन जाना, झाड–फूंक के माध्यम से भूत उतारना, मंत्र–तंत्र और जादू–टोना के बल पर भूत–पिशाच्च से मुक्ति पाना, कटोरा चलाना आदि के बारे में ग्रामीण लोगों में जो धारणाएँ रही है, इन्हीं धारणाओं के फलस्वरुप इन लोगों में अंधविश्वास की समस्या का निर्माण हो रहा है। आज इस स्थिति में परिवर्तन आया। शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के कारण लोग इन पर कम मात्रा में विश्वास करने लगे है। अंधश्रध्दा निर्मुलन समिति भी योगदान दे रही है।

शोषण समस्या के अंतर्गत जमींदारों द्वारा शोषण की समस्या, पुलिस शोषण की समस्या, अंग्रेज अफसरद्वारा शोषण की समस्या और नारी शोषण की समस्या आदि पर सोचा है। जमीदारों द्वारा शोषण की समस्या के अंतर्गत जमींदारों द्वारा किसानों की जमीने हड़प करना, सूद के बदले किसानों से वेठबिगार लेना, किसान–मजदूरों के औरतों की अस्मत को लूटना, किसानों

पर झूठे इल्जाम लगाकर उन्हें जेल भेजना, उनकी पिटाई करना, फसलों को नष्ट करना, किसानों को हमेशा दबाव में रखना आदि जमींदारों द्वारा शोषण के विविध आयाम ग्रामीण उपन्यासों में लक्षित होते है। आज इस स्थिति में काफी परिवर्तन आ गया है। अब जमींदारी प्रथा कानून से नष्ट हो चुकी है। परंतु जमींदारों की पुरानी ऐंठन और पुराने हथकण्डे आज जमींदारों के वंशजों द्वारा अपनाए जा रहे है, इसका भी परिचय कहीं – कहीं मिल जाता है। लेकिन उस पर जन–जागृति, जनता की एकता, संगठन व्यक्ति के द्वारा, जमींदारों द्वारा होनेवाले शोषण को रोका जा सकता है। उपन्यासों में इसके भी दर्शन होते है। नागार्जुन के रतिनाथ की चाची, बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, भैरवप्रसाद गुप्त के गंगा मैया और रेणु के मैला आँचल आदि उपन्यास इसके उदाहरण है।

पुलिस शोषण के अंतर्गत बेकसूर लोगों की पिटाई करना, रिश्वत लेना, जमींदारों से दांत–काठी–रोटी का संबंध रखना, गरीब किसानों का शोषण करना आदि पुलिस द्वारा शोषण के विविध हथकंडे आलोच्य उपन्यासों में देखने को मिलते है।

धार्मिक व्यक्ति द्वारा शोषण के अंतर्गत धर्म के नामपर ग्रामीण लोगों को ठगाना, श्राध्द द्वारा पैसे ऐंठना, भगवान का प्रसाद मानकर लोगों को भाँग पिलाने के लिए देना झाड–फूंक, जादू–टोना, पूजा–पाठ आदि के द्वारा लोगों में श्रध्दा निर्माण करना, ब्रह्म की स्थापना करने के लिए कहना आदि शोषण के रुप दिखाई देते है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' में धार्मिक व्यक्ति के शोषण की यथार्थ अभिव्यक्ति की गई है। महंथ सेवादास, रामदास, नागाबाबा, बूढ जोतखी आदि धार्मिक पाखंड के प्रतीक है। धर्म के नाम पर लोगों को लूटना तथा धर्म के नाम पर मठ के हर तरफ व्यभिचारी प्रवृत्ति को बढ़ावा देनेवाली प्रवृत्ति यहाँ लक्षित होती है। धार्मिक व्यक्ति लोगों की भावना के साथ खेलते है, उनकी श्रध्दा का फायदा उंठाकर उनकी श्रध्दा का मजाक उड़ाते है, धन कमाते है। आज भी ब्राह्मण, पूजा–पाठ आदि पर लोग विश्वास करते है।

'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में अंग्रेज अफसरों द्वारा जनता का शोषण करना, अर्थात उनकी पिटाई करना, जाति के आधारपर जवानों को फौज में स्थान देना, सलाम न करने पर लोगों को पीटना, जमीनपर लगाम थोपना, अत्याचार करना आदि का परिचय यहाँ मिलता है।

नारी शोषण के अंतर्गत जमींदार द्वारा नारी से अवैध संबंधों की मांग करना, नारी को जीवनसाथी चुनने का अधिकार न होना, परिवार की सेवा करना, परिवार के सदस्यों द्वारा शोषण होना, बहुविवाह, अनमेल विवाह, रखेल प्रथा आदि के कारण नारी का जीवन असुरक्षित रहना तथा विधवा नारी के लिए रुढ़ि-नियम को कड़े करना, पुनर्विवाह का अधिकार न होना, वैधव्य जीवन, वैधव्य में ही उम्र बीताना, उसके साथ अवैध संबंध रखना, उसे अवैध मातृत्व के लिए बाध्य करना ऐसी स्थिति में उसे समाज में छोडकर चले जाना आदि कई रुपों नारी शोषण देखने को मिलते है। आज भी किसी न किसी तरह ग्रामीण नारी का शोषण होता आ रहा है।

जातीय भेदाभेद की समस्या के अंतर्गत जातिबाह्य विवाह का विरोध, गोत्र बाह्य विवाह को प्रतिबंध, जातिबाह्य कर्म का विरोध, मंदिर, पाठशाला पर भेदाभेद का प्रचलन, अछूतों को दवाइयाँ दूर से देना, अछूतों की हत्या करना, जमींदारों, पुलिसों द्वारा अछूतों का शोषण, जातीय्ता के आधारपर संघर्ष होना, अपनी ही जाति श्रेष्ठ बताने का प्रयास करना आदि आयामों के माध्यम से आलोच्य उपन्यासों में ग्रामीण जन-जीवन में स्थित जातीय भेदाभेद की समस्या पर गहराई से सोचा गया है। आज ग्रामीण प्रदेश में शिक्षित प्रगतिवादी युवक जातीय भेदाभेद के खिलाफ आवाज उठाकर जातीय एकता प्रस्थापित करना चाहते है। बाबा बटेसरनाथ के जैकिसुन और उसके साथी इसके प्रतीक है।

भ्रष्टाचार की समस्या के अंतर्गत जमींदारों, महाजनों के साथ दांत-काठी-रोटी का संबंध प्रस्थापित करके पुलिसोंद्वारा भ्रष्टाचार करना, जंगल कटाई करके अवैध मार्ग से लकड़ियाँ बेचना, राजनीहितक दल-बदलाव के लिए भ्रष्ट नीहित को अपनाना, पुलिस द्वारा रिश्वत लेना और रिश्वत लेकर बेकसूर किसानों को झूठे जूल्म में बद करना अपने फायदे के लिए मठ का

महंथ बनने के लिए अधिकारी को रिश्वत देना आदि कई भ्रष्टाचार के प्रकार उपन्यासों में लक्षित होते है। आज भी भ्रष्टाचार ने भयावह रुप लिया है। देश के सामने यह एक बडी चुनौती बन गयी है।

अशिक्षा की समस्या के अंतर्गत ग्रामीण परिवेश में शिक्षा–दीक्षा के प्रति अनास्था, शिक्षा की असुविधा, शिक्षालयों की कमी के कारण उनमें अशिक्षा की मात्रा का बढ़ाना आदि अनेक बातें यहाँ लक्षित होती है। इन लोगों को शिक्षा का महत्व अधिक मात्रा में समझ में नहीं जा रहा है, परंतु धीरे–धीरे सरकारी विकास योजनाओं के माध्यम से और अनुदान विषयक सरकार की उदारनीति के कारण ग्रामीण जन–जीवन में भी शिक्षा–दीक्षा का प्रसार एवं प्रचार हो रहा है। नारी शिक्षा पर भी आज ध्यान दिया जा रहा है। रतिनाथ की चाची, बाबा बटेसरनाथ में शिक्षा की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

यौन संबंधों की समस्या पर आलोच्य उपन्यासों में विचार किया है। इस समस्या के अंतर्गत विवाह पूर्व यौन संबंध, भगतों के साथ प्रस्थापित यौन संबंध, बहुविध पुरुषों से यौन–संबंध, अनमेल यौन संबंध, परिवार में स्थापित रिश्ते बाह्य यौन संबंध आदि अवैध यौन–संबंधों के विविध आयाम उपन्यासों में देखने को मिलते है। यह भी समस्या आज समाज में लिए भयावह बन गई है।

इसके अलावा नशा–पान की समस्या, शिक्षालयों की असुविधा, अस्पताल, डाकखाना, यातायात की सुविधा का अभाव आदि कई समस्याओं पर आलोच्च उपन्यासों में सोचा गया है उसके कारण ग्रामीण जनों का होनेवाला शोषण, उपेक्षा आदि के दर्शन हो जाते है।

अत: यह स्पष्ट है कि ग्राम जन–जीवन समस्या और अभावों में अटका हुआ है। प्राकृतिक आपदा, जातीय भेदाभेद, भौतिक असुविधा, अशिक्षा, असहयोग आदि कई कारणों से समस्याएँ बढ़ रही है। सरकार की उदारनीति, जनसंगठन सहयोग, समाजसेवी संस्था का सहयोग मिले तो सभी समस्याएँ हल हो सकती है। जब तक समस्याएँ रहेगी तक तक विकास

की गति धीमी रहेगी। रामराज्य–ग्रामराज्य का सपना 'सपना' ही रहेगा ऐसा लगता है।

शिक्षा सुविधा, शिक्षा के प्रति जागृति, अध्यापकों की नियुक्ति, नई शिक्षा, प्रौढ शिक्षा का प्रसार एवं प्रचार हो तो अज्ञान की समस्या हल होगी। अज्ञान से उत्पन्न अंधविश्वास की समस्या है। धर्म, धार्मिकता, ग्राम लोगों की भावुकता, बाह्याडंबर, रुढ़ि–परंपरा का खोखलापन स्पष्ट करके सही धर्म की जानकारी लोगों को दी जाए। 'अनिस' जैसी समाजसेवी संस्था कार्यरत रहे तो अंधविश्वास की मात्रा कम होगी। अंधविश्वास कम होकर धर्म का सही अर्थ स्पष्ट हो जाए, मानवता धर्म का रुप स्पष्ट हो जाए तो जातीय भेदाभेद की समस्या आप ही आप हल हो सकती है। शिक्षा प्रसार से लोग अपने अधिकार के बारे में जागृत बनते हैं जो शोषण के विरोध में विद्रोह करते है। परिणामतः शोषण से मुक्त उनकी जिंदगी बनती है। नारी का भी जीवन इसीकारण स्वतंत्र, मुक्त, आजाद बनेगा। शिक्षा प्रसार से भ्रष्टाचार को मिटाया जाता है। अवैध संबंधों पर रोक लगाई जाती है। विवाह, विधवा विवाह, पुनर्विवाह को समाजमान्यता मिलती है। नशापान से उत्पन्न खतरों के प्रति लोग अगाह हो जाते है। परिणामतः नशापान, नशिली चीजों का त्याग का कार्य वे करते है। शिक्षा से नौकरी मिलेगी तो भूख, बेकारी, अवैध धंदे जैसी समस्याएँ समाप्त होगी। अतः यहाँ स्पष्ट है सभी समस्याओं की जड़ अज्ञान है इसलिए साक्षरता शिक्षा प्रसार सभी समस्याओं के लिए महत्वपूर्ण उपाय है। जब ग्राम साक्षर शिक्षित होगा तब वह समस्या से मुक्त ही बनेगा। ऐसा मुझे लगता है।

सांदर्भ :-

1. Francis E Merril : Society and Culture, Page 46
2. संपा, सुषमा प्रियदर्शिनी – हिन्दी उपन्यास, पृ. 278
3. विवेकी राय – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्रामजीवन, पृ. 271
4. रामलाल विवेक – आधुनिक भारत के निर्माता – पंडित जवाहरलाल नेहरु, पृ.136
5. नागार्जुन – बाबा बटेसरनाथ, पृ.50–51
6. डॉ.जवाहर सिंह – हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प–विधी, पृ.84
7. अमरसिंह रणपतिया – हिमांचली लोकसाहित्य, पृ.167
8. नागार्जुन – बलचनमा, पृ. 30
9. फणीश्वरनाथ 'रेणु' – मैला आँचल, पृ. 13
10. वही, पृ. 79
11. वही, पृ. 46
12. नागार्जुन – बाबा बटेसरनाथ, पृ. 55
13. भगवतीचरण वर्मा – चित्रलेखा, पृ. 175
14. नागार्जुन – रतिनाथ की चाची, पृ. 83–84
15. फणीश्वरनाथ 'रेणु' – मैला आँचल, पृ. 13
16. डॉ.बलवंत साधु जाधव – प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना, पृ. 183
17. पारसनाथ सिंह – प्रेमचन्दकालीन उपन्यासों में ग्रामीण जीवन, पृ. 86
18. नागार्जुन – रतिनाथ की चाची, पृ. 55
19. नागार्जुन – बलचनमा, पृ. 5
20. वही, पृ. 25
21. डॉ.बालकृष्ण गुप्त – हिन्दी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ, पृ. 67
22. नागर्जुन – बाबा बटेसरनाथ, पृ. 37

23. वही, पृ. 43

24. फणीश्वरनाथ 'रेणु' – मैला आँचल, पृ. 96

25. नागार्जुन – बाबा बटेसरनाथ, पृ. 143

26. फणीश्वरनाथ 'रेणु' – मैला आँचल, पृ. 219

27. बाबूराम गुप्त – उपन्यासकार नागार्जुन, पृ. 147

28. नागार्जुन – बाबा बटेसरनाथ, पृ. 78

29. देवेश ठाकुर – मैला आँचल की रचना प्रक्रिया, पृ. 74

30. नागार्जुन – रतिनाथ की चाची, पृ. 58

31. फणीश्वरनाथ 'रेणु' – मैला आँचल, पृ. 23

32. देवेश ठाकुर – मैला आँचल की रचना प्रक्रिया, पृ. 72

33. नागार्जुन – रतिनाथ की चाची, पृ. 85–86

34. डॉ. देवेश ठाकुर – मैला आँचल की रचना प्रक्रिया, पृ. 68

35. नागार्जुन – रतिनाथ की चाची, पृ. 54

36. वही, पृ. 55

37. नागार्जुन – बलचनमा, पृ. 56

38. फणीश्वरनाथ रेणु – मैला आँचल, पृ. 242

39. नागार्जुन – रतिनाथ की चाची, पृ. 47

40. वही, पृ. 99

41. नागार्जुन – बलचनमा, पृ. 56

42. वही, पृ. 167

43. भैरवप्रसाद गुप्त – गंगा मैया, पृ. 8

44. नागार्जुन – बाबा बटेसरनाथ, पृ. 123

45. वही, पृ. 17

46. गणेश प्रसाद पांडेय – आठवें दशक की हिन्दी कहानी में ग्रामीण जीवन, पृ. 107

47. धर्मयुग – फरवरी, 1976, पृ. 18

48. देवेश ठाकुर – मैला आँचल की रचना प्रक्रिया, पृ. 77

49. वही, पृ. 77

50. गणेश प्रसाद पांडेय – आठवें दशक की हिन्दी कहानी में ग्रामीण जीवन, पृ. 40